चीन के कम्यून

राहुल सांकृत्यायन

पीपिल्स पब्लिशिंग हाउस, 1959

चीन के कम्यून

राहुल सांकृत्यायन

•

पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस (प्रा.) लिमिटेड
रानी झांसी रोड, नई दिल्ली १.

प्राक्कथन

यह छोटी सी पुस्तक मेरी १९५८ की यात्रा में ६ कम्यूनों को देखने का परिणाम है। मैं उनसे बहुत प्रभावित हुआ। बिना मशीनों की सहायता के उन्होंने कृषि में जो प्रगति की है, छोटे-छोटे उद्योग-धंधों का जिस प्रकार सफल संगठन किया है, उससे कम्यून के कर्मी बहुत उत्साहित हुए हैं। वस्तुतः कम्यून समाजवादी देशों में भी प्रचलित उत्पादन संगठन में एक गुणात्मक परिवर्तन है। थोड़े समय में उसकी अभूतपूर्व सफलता को देखकर विरोधी लोग शीघ्र ही उनके पतन और विनाश की कल्पना करके सन्तुष्ट होना चाहते हैं। कम्यूनों का आविष्कार नेताओं ने नहीं जनता ने किया—इसकी ओर भी उनका ध्यान नहीं जाता, न इसी तरफ कि कम्यून विकेन्द्रीकरण के उत्तम नमूने हैं, सिर्फ उत्पादन ही नहीं, शासन के क्षेत्र में भी। पूंजीवादी पत्रों में कम्यूनों के विरोध में काफी लिखा जा रहा है, उनको बदनाम करने के लिए झूठे प्रचारों को भी इस्तेमाल किया जा रहा है। मार्क्सवाद के पुराने पड़ जाने की घोषणा करने वाले लोग हमारे बूढ़े चीन की सफलताओं का कारण वहां के लोगों के मेहनतीपन को बतलाते हैं। वह यह नहीं मानना चाहते कि सारी सफलताएं इसलिए हैं कि वहां मनुष्य के मानसिक और शारीरिक श्रम तथा प्राकृतिक साधनों के उपयोग की उन सारी बाधाओं को दूर कर दिया गया है जिन्हें हमारे कर्णधार सुरक्षित रखना चाहते हैं।

बेबुनियाद के समाचार गढ़ने में पूंजीवादी सिद्धहस्त हैं। उन्होंने एक बार बेपर की उड़ायी कि नगरों में कम्यूनों का कायम करना रोक

दिया गया है। २८ जनवरी १९५९ की पेकिंग की खबर है : "नगरों में कम्यून स्थापित करने का आन्दोलन क्रमशः ऐसे रूप में विकसित होता रहेगा, जो कि शहर की विशेष अवस्था के अनुकूल है।" शहर उद्योग प्रधान होते हैं, जब कि गांव कृषि प्रधान। शहर हर दिशा में गांवों की अपेक्षा आगे बढ़े हुए हैं। इस भेद को हटाने में कम्यून बड़ी तेजी से कदम उठा रहे हैं। यही कारण है कि चन्द महीनों में थोड़े से जातीय अल्पमत क्षेत्रों को छोड़ कर महान चीन का सारा देहात कम्यूनों में संगठित हो काम करने लगा है। **नेशनल स्टैंडर्ड** (२९–१–५९) ने स्वीकार किया : "(कम्यून) आन्दोलन ने एक उच्चतम महत्व की बात सिद्ध कर दी है : विशाल जनगण बिना या अत्यल्प भौतिक साधनों के जरिए तथा प्रायः शिक्षा रहित होते हुए भी, व्यवस्थित पुनर्निर्माण कार्य एवं अपने सामाजिक जीवन की पुनर्रचना में स्वतः क्रियाशील हो सकता है... (चीनी कम्यूनों ने) जनता की पहल और व्यावहारिक आयोजनाबद्ध क्रिया का जो जबर्दस्त सबूत दिया है, उसे भूला नहीं जा सकता... एक संवाददाता ने बतलाया कि पनबिजली स्टेशन के साथ एक काफी बड़े बांध-जलाशय को बिना किसी कागजी कार्रवाई के बना दिया गया।" इन पंक्तियों के लेखक ने प्रसिद्ध तुङ्ह्वान में ऐसे ही एक पनबिजली स्टेशन तथा शानसन कम्यून में एक पहाड़ी जलनिधि को बना देखा।

मैं "चीन में क्या देखा", "नवीन चीन" और "चीन में कम्यून" लिखना चाहता हूं, उनमें आखिरी पुस्तक पाठकों के सामने उपस्थित हो रही है।

देहरादून, २९–३–५९ **राहुल सांकृत्यायन**

कम्यून की ओर

१९५७ में जिस तरह रूस ने स्पुतनिक का अद्भुत आविष्कार किया, वही बात चीन के कम्यूनों की है। कम्युनिस्ट या पूर्ण साम्यवादी समाज की स्थापना की ओर यह गंभीर और लम्बा कदम है। कम्यूनों की अपनी यात्रा के बारे में कुछ कहने से पहले एक पंचायती खेती (सहकारी फार्म) के बारे में कुछ कहना आवश्यक है, क्योंकि कम्यून उसी का अगला कदम है।

मैं २१ जून को चीन पहुंचा। उस समय तो क्या, जुलाई में भी कम्यूनों की चर्चा नहीं सुनी जाती थी। अभी सहकारी फार्म ही कृषि के सबसे उन्नत रूप थे। २ जुलाई को मैं मंचूरिया (पूर्वोत्तर चीन) के विशाल नगर शिन-यान (मुक्दन) में पांच दिन के लिए गया था। इसी समय मुझे पहले-पहल चीनी सहकारी फार्म को देखने का अवसर मिला। ताछिन (महातरुण) फार्म सैयां (शिन-यान का यही उच्चारण है) से २३ किलोमीटर (१८ मील के करीब) है। मोटर की यात्रा करते वक्त मालूम हो रहा था कि चार-पांच शताब्दियों के जबर्दस्त बसाने के प्रयत्न करने पर भी साइबेरिया और कोरिया के पड़ोस में बसे चीन के इस प्रदेश में अभी नये बसनेवालों की बहुत गुंजायश है। वहां हरी-भरी घासों से ढंकी जमीन अधिक थी और ग्राम कम। यह न्याउनिङ प्रदेश पूर्वोत्तर चीन के सबसे दक्षिण का, अर्थात मुख्य चीन से लगा हुआ प्रदेश है। उत्तर की ओर बढ़ने पर मनुष्यों की आबादी और भी कम मिलेगी। यह अवस्था बहुत दिनों तक नहीं रह सकती, क्योंकि बड़ी योजना के

अनुसार भूमि को आबाद किया जा रहा है। चीन में जंगलों के संरक्षण और संवर्धन का काम बड़ी तत्परता से हो रहा है। यह कल के नंगे पहाड़ों पर उग रहे पांच-सात वर्ष के वृक्षों को देखने से ही मालूम हो जायगा। मंचूरिया अपने विशालकाय बाघों के लिए जगत प्रसिद्ध है। वे बंगाल के बाघों से भी बहुत बड़े होते हैं। पर मंचूरिया के आमूल परिवर्तन से वहां की व्याघ्र जाति के उच्छिन्न होने का खतरा नहीं है। ४ जुलाई को अपने मित्र दुभाषिया श्री चेङ के साथ मैं ताछिन पहुंचा। अन्तिम दो-तीन मील छोड़कर सड़क पक्की थी। पहले ही सूचना मिल चुकी थी, इसलिए ४२ वर्षीय अध्यक्ष लेउ तथा २१ वर्षीया उपाध्यक्षा छोइ-शू-श्यान हमें आफिस में ही मिले।

ताछिन सहकारी फार्म

आफिस के ईंट-खपड़ैल के पांच-छः कमरे अच्छे साफ-सुथरे थे। चीन में चाय और सिगरेट स्वागत की प्रथम वस्तुएं हैं। चाय की हरी पत्तियों का रस तो पानी की तरह पीया जाता है, और दिन में बीसियों बार। अनभ्यस्त लोगों को बिना चीनी-दूध की यह चाय पसन्द नहीं आती। पर आदमी जल्द ही इसका अभ्यस्त हो जाता है। मुझे तो भारत से ही चीनी चाय पसन्द थी, हां सिगरेट मेरे काम की नहीं थी। चाय पीते वक्त अध्यक्ष ने बतलाया: १६५८ में यहां कम्युनिस्ट शासन स्थापित हुआ। जल्द ही भूमि-व्यवस्था में सुधार हुआ और तीन जमींदार परिवारों को भी उतनी ही भूमि मिली, जितनी दूसरों को। फिर मिलकर काम करने — श्रम सहकार — की व्यवस्था हुई। खेत अपने-अपने रहे, पर काम मिलकर किया जाने लगा। इसके बाद सहकारी खेती का आरम्भ हुआ। आरम्भ में एक गांव में भी कई छोटे-छोटे सहकारी फार्म बनाये गये, फिर गांव भर का एक फार्म और अन्त में ताछिन जैसा २२ गांवों का एक फार्म बन गया, जिसे सुविधा के लिए १० गांवों में बांटा गया। सारे फार्म में ३००३ परिवार — १५,६७० व्यक्ति — बसते हैं। इनमें काम करने वाले पुरुष ३४१० और स्त्रियां १६५० हैं। काम करने की आसानी के लिए इन ५००० कर्मियों को विभिन्न दलों में संगठित

किया गया है, जिनमें सबसे निचले दल में ७ से १० व्यक्ति होते हैं। दल स्त्रियों के अलग और सम्मिलित भी हैं। दलपतियों में ३४ स्त्रियां भी हैं। ताछिन की स्त्रियां कितनी आगे बढ़ी हुई हैं, इसे हम २१ वर्षीया उपाध्यक्षा छोइ से समझ सकते हैं।

यह कौलियान का मुल्क था। खाद्य और खेती दोनों में कौलियान की प्रधानता थी। तीस वर्ष से कौलियान का नाम सुनता आया था। सबसे पहले रूस-चीन युद्ध में सेना के कौलियान के खेतों में छिपने की बात पढ़ी थी, पर कौलियान क्या है, यह नहीं जान पाया था। गांव में पूछने पर कई घरों में वह नहीं मिला, पर जब शू परिवार की महिला ने लाकर उसे हाथ पर रखा तो देखा वह सफेद बाजरा है—बनारस की ओर इसे बाजरा कहते हैं, राजपूताना का हरा बाजरा नहीं। ताछिन वाले अधिक से अधिक खेतों को धान का बनाना चाहते हैं, यह इसी से मालूम हो जायगा कि जहां १९५७ में ६८३ एकड़ में धान की खेती हुई थी, वहां १९५८ में १८७० एकड़ में हुई। अगले साल ३७०० एकड़ धान के खेत होंगे। पुराने कौलियान के खेतों को गेहूँ के खेतों में आसानी से परिणत किया जा सकता था, पर चीनी लोग गेहूँ से ज्यादा चावल पसन्द करते हैं। अन्य फसलों की खेती निम्न प्रकार हुई: मकई १४८० एकड़ (१९५७) से १७०० एकड़ (१९५८), आलू ४४० एकड़ (१९५७) से १००० एकड़ (१९५८), चीनी का चुकन्दर १००० एकड़ (१९५७) से २००० एकड़ (१९५८), बाजरा १६०० एकड़ (१९५७) से ११०० एकड़ (१९५८), सोया ११६० एकड़ (१९५७) से ५३० एकड़ (१९५८), कांगुन ३०० एकड़ (१९५७) से २४० एकड़ (१९५८), दूसरे धान्य ६०० एकड़ (१९५७) से १६० एकड़ (१९५८), तरकारी ३४० एकड़ (१९५७) से ६० एकड़ (१९५८), अंगूर-सेव ० एकड़ (१९५७) से ३०० एकड़ (१९५८)। फार्म में जोती भूमि ७७०० और बिना जोती २३०० एकड़ है। सारे फार्म की आमदनी इस साल ६,८०,००० युवान (१३,६०,००० रुपया) हुई। मंचूरिया बहुत ठंडा इलाका है। यहां साल में एक ही बार खेती हो सकती है।

बाकी समय भूमि बर्फ से ढंकी रहती है। ऐसे समय में मछली पालने के लिए तालाब खोदना, तेल पेरना जैसे काम होते हैं।

मछली पालने के अतिरिक्त पशु-पक्षी पालन भी फार्म करता है, जिनकी वृद्धि निम्न प्रकार है: मुर्गी २५५ (१९५७) से ३००० (१९५८), बत्तक ० (१९५७) से १००० (१९५८), सूअर ० (१९५७ से ६००० (१९५८), समूरी चूहे ० (१९५७) से १०० (१९५८), गायें ३०० (१९५८)। चीन दूध न पीनेवाला देश है। नवपाषाण युग में पशुपालन मांस के लिए ही आरम्भ हुआ। उसी समय मनुष्य ने मिट्टी के बर्तन भी बनाये। अनाज की खेती का आरम्भ भी इसी समय हुआ। क्षीरपायी लोगों ने दूध पीना शुरू किया। चीनी, बर्मी, जापानी आदि के पूर्वजों ने दूध पीना नहीं सीखा। इसीलिए आज भी वे गाय को दूध के लिए नहीं पालते, न भैंस को ही। मध्य और दक्षिणी चीन में हल भैंस-भैंसों से जोता जाता है, पर भैंसों का दूध वहां नहीं निकाला जाता। यह अवस्था अधिक दिनों तक नहीं रह सकती। अब अस्पतालों में दूध दिया जाने लगा है, शिशुशालाओं में बच्चों को भी दूध मिलता है। टोस्ट और मक्खन भी शहरों में चलने लगा है। नवपाषाण युग में ही मनुष्य ने आग में भुने मांस की तरह आग पर सेंकी रोटी खाना शुरू किया, जिसका विकास तवे, तंदूर की रोटियों तथा पावरोटी में हुआ। चीन ने उबाल कर रोटी बनाना स्वीकार किया है और आज भी उसकी रोटी (मोमो) पानी या भाप में पके आटे के फारे जैसी होती है। फुलके तो मोमो का स्थान नहीं ले सकते, पावरोटी शायद उसकी साथिन बनने का दावा कर सकती है।

फार्म के गांवों में ६ स्कूल हैं। आफिस के पास ही आठ दर्जे तक का स्कूल देखा जिसमें ३७१ छात्र (१०९ बालिकाएं) और ११ अध्यापक (१ महिला) थे। पाठ्य विषय थे: साहित्य, गणित, प्रकृति-अध्ययन, ड्राइंग, इतिहास, भूगोल, कृषि, संगीत और व्यायाम।

चीन में न तो आदमी दुबले दिखाई पड़ते हैं, न पशु। फार्म के घोड़े, खच्चर, गदहे, बैल सभी तगड़े थे। हां, गदहे न तो दुबले थे, न उनकी अवहेलना ही की जा सकती थी। गाड़ियों में घोड़े और खच्चर से आगे

गदहे उसी तरह जोते जाते हैं, जैसे हमारे यहां भी कहीं-कहीं बैल गाड़ियों में तीसरा बैल।

अध्यक्ष ने बतलाया कि अगले दस वर्षों में गांव को नगर की तरह बसा दिया जायगा। सभी घर ईंट के पक्के बन जायेंगे। तेल की फैक्टरी, आलू-चूर्ण फैक्टरी, शराब फैक्टरी, खाद फैक्टरी, ईंट-टाइल फैक्टरी, सीतलपाटी और फर्नीचर का कारखाना, चावल-आटे की मिल इत्यादि कायम हो जायेंगे। खेती की मशीनों में १० ट्रैक्टर भी लिये जायेंगे।

गांव देखने की इच्छा प्रकट करने पर अध्यक्ष और उपाध्यक्ष हमें उधर ले चले। रास्ते में एक पोखरी मिली, जिसके बीच से सड़क गयी थी। पीले से पानी को देखकर जब मैंने उसका कारण पूछा तो मालूम हुआ कि पशुओं के लिए भी यह अपेय पानी वस्तुतः २५ लाख की आबादी वाले मुकदन नगर के मल-मूत्र का खजाना है, जिसे खेतों में खाद के तौर पर दिया जाता है। उसमें न बदबू थी, न कहीं मक्खियों का नाम था। चीन में पाखाना-पेशाब निश्चित स्थान पर ही किया जाता है और उसका जरा भी अंश बरबाद न कर सबको खाद बना दिया जाता है।

गांव में घूमते हुए हम शू परिवार में गये। पांच भाइयों के इस परिवार में १२ व्यक्ति हैं। भाइयों में ३ किसानी करते हैं, बाकी कारखाने के मजदूर हैं। एक भाई के पास रसोई लेकर दो कमरे थे। सोने-बैठने का कमरा बड़ा था, जिसके बीच में चौथाई स्थान छोड़कर दो चबूतरे थे। उन पर सीतलपाटी बिछी हुई थी। मालूम हुआ कि यह चबूतरा भीतर से खोखला है। जाड़ों में बाहर की ओर से लकड़ी जला दी जाती है, जिससे चबूतरा और कमरा गर्म हो जाता है। यहां की भयंकर सर्दी से बचने के लिए यह आवश्यक है, यद्यपि इसमें ईंधन का खर्च अधिक होता है। ऐसे चबूतरों को काङ कहते हैं, जो चीन के अतिरिक्त कोरिया में भी पाये जाते हैं। कमरे में सिलाई मशीन, कई बक्स, स्टूल, फोटो, दर्पण आदि थे। गृहिणी ने बताया कि हमारे पास २१ मुर्गियां और दो शूकरियां हैं।

आफिस और स्कूल के अतिरिक्त सारे मकान मिट्टी की दीवारों वाले थे। चीन में मकानों की छतें स्थानीय वर्षा के अनुसार मिट्टी, फूस

या खपड़ैलों की होती हैं। इस ओर फूस की छतें मिट्टी से ढंकी होती हैं। अध्यक्ष लेउ के अनुसार कुछ ही सालों में यहां कई-मंजिले पक्के मकान बन जायेंगे। यह हम बतला आये हैं कि १५,६७० व्यक्तियों में यहां ५०६० स्त्री-पुरुष ही काम करने वाले हैं, अर्थात् तीस प्रतिशत लोग उत्पादन कार्य में भाग लेते हैं। कम्यूनों में कमकरों की संख्या ४० प्रतिशत से अधिक होती है। फार्म के प्रबन्ध के लिए जन-निर्वाचित प्रबन्ध समिति, निरीक्षण समिति आदि १० समितियां हैं।

यह जुलाई का महीना था, जो हमारे यहां की तरह वर्षा का महीना समझा जाता है। वर्षा हमारे यहां मक्खियों और मच्छरों का मौसम है। दिन में मक्खियों से तंग और रात को मच्छरों की मार! नौ ही वर्ष पहले चीन की भी वही हालत थी। बल्कि चीन तो इस बात में सरताज था। पर आज मक्खी देख पाना आश्चर्य की बात है। दवाइयों, सफाई और मार से चूहों और गौरैयों के साथ उनका भी संहार कर दिया गया। सैयां लौटते समय हमने खाद के पानी से भरी नहर देखी, जो सैयां से १८ मील चलकर यहां आयी थी। शायद वर्षा का पानी भी इसमें सम्मिलित था, नहीं तो दूसरे महीनों में पानी इतना नहीं रहता होगा।

१. येनथाइ कम्यून

हृदयरोग के आक्रमण के कारण अगस्त का सारा महीना मुझे अस्पताल में रहना पड़ा था। इसका एक परिणाम यह हुआ कि तिब्बत यात्रा का खयाल मन से निकाल देना पड़ा। सहृदय विशेषज्ञ डाक्टर चाङ ने कहा कि ऐसे हृदय को लेकर आप बारह हजार फुट की ऊंचाई की बस्तियोंवाले तिब्बत में नहीं जा सकते। साधारण यात्रा को भी बन्द कर विश्राम करने का आदेश था। मैंने कहा, कार्य से विरत रह कर मानसिक विश्राम मुझे नहीं मिल सकता। अन्त में १६ सितम्बर को जाने की इजाजत मिली। चीन में आकर चीनी अजन्ता तुङह्वान को देखे बिना देश लौटना यात्रा को अपूर्ण रखना था। हमने रेल से सिआन (प्राचीन छङआन) के लिए प्रस्थान किया। वहां से लनचौ विमान से जाना था, पर सीट नहीं मिल सकी। प्रतीक्षा करने के लिए हम तैयार नहीं थे, इसलिए १७ और १८ तारीख के आधे दिन तक विश्राम करके हम रेल से लनचौ के लिए रवाना हुए। स्थानीय लोग ही नहीं, तिब्बत और सिङक्याङ के लोग भी इस शहर को इसी नाम से पुकारते हैं, पर पेकिङ में उच्चारण लनटौ है। चीन ने लातिन लिपि को स्वीकार किया है और उच्चारण पेकिङ के अनुसार है। अगली पीढ़ी को दिक्कत नहीं होगी, क्योंकि उसे स्कूल में वही उच्चारण सिखाया जा रहा है। हां, वर्तमान पीढ़ी को अवश्य कठिनाई का सामना करना पड़ेगा। १९५८ में पहली सितम्बर से शुरू होनेवाले स्कूली वर्ष से पहली कक्षा में रोमन लिपि के प्राइमर पढ़ाये जाने लगे हैं। पेकिङ को ही ले लीजिए! मैंने

अपने दुभाषिया मित्र श्री चेङ से सीख कर पेचिङ कहना शुरू किया, पीछे रोमन में उसे बेइजिङ पढ़ा। नानकिङ को वहां वाले नानचिङ कहते हैं, पर बेइजिङ का उच्चारण नानजिङ है। लनचौ का लनटौ उच्चारण भी ऐसा ही है। लनचौ नाम से मैं तिब्बत यात्राओं के समय से परिचित था। यह जिस कान्सू प्रदेश की राजधानी है, उसके निवासियों में तिब्बती लोगों की भी काफी संख्या है। ९ वर्ष पहले लनचौ की जनसंख्या ढाई लाख थी, पर आज सात लाख है। शहर में नये-नये कारखाने खुलते जा रहे हैं। मध्य-एशिया तथा नये फौलाद नगर पाउथू की ओर जानेवाली रेल लाइनों एवं सिआन-पेकिङ लाइन का यहां जंक्शन होने से कुछ ही वर्षों में यह सैयां जैसा बड़ा नगर हो जायेगा, इसमें सन्देह नहीं।

लनचौ पीतगंगा (ह्वाङहो) के दाहिने किनारे पेकिङ से पच्छिम उतनी ही दूर है, जितना कलकत्ता से दिल्ली। ह्वाङहो हमारी गंगा से भी बड़ी नदी है। कुछ ही साल पहले तक अपनी भयंकर बाढ़ के कारण वह मृत्यु और अकाल की नदी समझी जाती थी। अब अनेक बांधों, जलनिधियों और पनबिजली घरों के कारण वह जीवन नदी बन गयी है। यद्यपि पीतगंगा के प्रति यहां लोगों का भाव हमारे जैसा नहीं है, तो भी इसे देख मुझे अपनी गंगा, खास कर हरद्वार की गंगा की याद आ गयी। हां, दोनों में यह अन्तर अवश्य है कि जहां हरद्वार में गंगा पहाड़ों (हिमालय) से बाहर निकल कर मैदान में आती है, वहां लनचौ में पीतगंगा अभी पहाड़ों की भूलभुलैया में ही रहती है। लनचौ समुद्र तल से चार हजार फुट से अधिक ऊंचाई पर बसा है, इसलिए सितम्बर में उसका मौसम बहुत सुहावना था। नदी की धारा यहां उतनी ही चौड़ी है, जितनी बरसात में हरद्वार की गंगा की। बरसात के कारण इस वक्त जल रजस्वल था। जाड़ों में वह नीले रंग का हो जाता है। हम दिन के ११ बजे यहां पहुंचे थे। अगले दिन तुङह्वान के हवाई अड्डे च्युछाङ को उड़ना था। मुझे मालूम हुआ कि पीत गंगा के पार एक कम्यून है। मैं उसे देखने के लिए लालायित हो उठा। पिछले डेढ़ महीने में कम्यूनों के बारे में बहुत पढ़ता रहा था। इस यात्रा में मेरे दुभाषिया श्री चाउ थे। वह बड़े ही सीधे और मधुर स्वभाव के तथा स्वयं

पहले चित्रकला के विद्यार्थी थे। हमें पहले ही कह दिया गया था कि पुल पर कार नहीं जा सकती, अतः एक मील के करीब पैदल चलना होगा। मैं अस्पताल से निकला था। डाक्टर की सख्त हिदायत थी कि मुझे बहुत चलना और ऊपर चढ़ना नहीं चाहिए। श्री चाउ और स्थानीय अधिकारी शू महाशय साथ थे। पिछले ५–६ सालों में तिगुना बढ़नेवाले लनचौ शहर में घरों और सड़कों का निर्माण कितनी तेजी से हो रहा है, इसे कहने की आवश्यकता नहीं। हमारा सत-मंजिला होटल तीन वर्ष पहले बना था। सामने की सड़क चौड़ी करके पक्की की जा रही थी, जिसे पहली अक्तूबर तक समाप्त कर डालना था। इसलिए उस पर चौबीसों घंटे काम हो रहा था। साधारण किसान और मजदूर ही नहीं, कालेजों के लड़के-लड़कियां और अध्यापक भी श्रमदान कर रहे थे। रात को बिजली की तेज बत्तियां जलती थीं, जिनसे रात भी दिन सी मालूम होती थी। होटल से निकलने पर कार को काफी चक्कर काटना पड़ता था।

हम पुल के पास पहुंचे। नदी करार तक भरी थी। पुल लकड़ी का था। परले तट से थोड़ा इधर खम्भा धंस गया था, जिससे पुल झुक गया था। पुलको मरम्मत करने की जरूरत नहीं समझी गयी। इंजीनियरों ने ठोंक-पीट कर बतलाया कि अभी दो-तीन वर्ष यह काम दे सकता है। आज के चीन में दो-तीन वर्ष का बहुत मूल्य है। पुल लोहे का बनाना था। उस पर बहुत लोहा और श्रम लगता, जिसे इस समय नगर के कारखानों और वासगृहों पर लगाया जा सकता है। इसीलिए काठ का टेढ़ा पुल काम दे रहा है। पुल पर खच्चर गाड़ियों को चलते देखा, जिसने बताया कि सामान के आर-पार जाने में दिक्कत नहीं। लनचौ शहर नदी के दाहिने तट पर बसा है। इस ओर पहाड़ों से घिरा मैदान बहुत विशाल है, जब कि दूसरी ओर वह उतना बड़ा नहीं है। तो भी किसी समय शहर उस पार जरूर फैलेगा। पुल के पार कुछ घर मिले, जिनके पीछे तिमंजिले मकानों की पांत तैयार की जा रही थी। मालूम हुआ कि ये कम्यून के आफिस की इमारतें हैं। रास्ता खेतों की टेढ़ी-मेढ़ी मेड़ों पर से था। एक जगह मिर्च के कुछ पौधों को देख

आश्चर्य हुआ। चीन में मिर्च-मसाले के बिना ही मांस और सब्जी बनती है। शायद कान्सू में बसनेवाली कुछ जातियां मिर्च-प्रेमी हैं।

खेतों और फल के वृक्षों के भीतर ही एक पांत से सात-आठ कोठरियां थीं। उनकी दीवार कच्ची किन्तु सफेदी की हुई थी। छत मिट्टी की थी। सभी सहकारी फार्मों और कम्यूनों में टेलीफोन का रहना आवश्यक है। कम्यून संचालक श्री सून को सूचना मिल चुकी थी। वह हमारा इंतजार कर रहे थे। मेरे देखे सभी कम्यूनों के संचालकों की तरह इनकी आयु भी ३० के करीब थी। वैसे चीन विश्वमित्र है, पर रूस के बाद उसकी सबसे अधिक आत्मीयता भारत के साथ है। इसमें हमारा पुराना सम्बंध भी कारण हो सकता है। इन्दो नाम उनके लिए बड़ा आकर्षक मालूम होता है। कमरे में कितनी ही कुर्सियां और मेज रखी थीं। बैठते ही चाय-सिगरेट के साथ कश्मीरी आमरी सेव के बराबर के ६–७ सेव आये। मैंने पेकिङ में देखने में सुन्दर पर खाने में कुछ-न-कुछ खट्टे सेत्रों को खाया था, इसलिए समझा ये भी वैसे ही होंगे। पीछे संचालक ने जब एक टुकड़ा काट कर दिया, तो देखा कि उसका स्वाद आमरी जैसा है। चाय पीते हुए श्री सून ने अपने कम्यून का परिचय देना शुरू किया: हमारा येनथाइ येनमेन कोन्स (जन-कम्यून) ६ अगस्त को, अर्थात ३१ दिन पहले स्थापित हुआ। पहले यहां ४ सहकारी फार्म थे। कम्यून में ३५ गांव हैं। यहां के कितने ही नर-नारी लनचौ के कारखानों, आफिसों और विद्यालयों में काम करते हैं, जो रात को घर आ जाते हैं। वे कम्यून में 'सम्मिलित' नहीं हैं। हमारी जनसंख्या १७,३८० और परिवार ३०४८ हैं। बच्चों और बूढ़ों को छोड़ काम करनेवालों की संख्या ७,६०० (स्त्रियां ३४२१) है। सारे खेत ४७०० एकड़ हैं, जिनमें अनाज के १३००, सर्दा (खर्बूजे) के ५००, सब्जी के २०००, फलों के ३०० एकड़ हैं। लनचौ के पास होने से सब्जी का बहुत बड़ा बाजार कम्यून के पास है। फलों के लिए भी यही बात है। यहां के खर्बूजे कन्धारी या ईरानी सर्दे जैसे मीठे थे। वैसे चीन में सिङक्याङ के हामी इलाके के खर्बूजे बहुत मशहूर हैं। मैंने उन्हें भी खाया है। मुझे लनचौ के खर्बूजे उनसे कम मीठे हीं मालूम हुए। १९५८

में यहां १० लाख किलोग्राम (१००० टन) खर्बूजे हुए, अगले साल १४ लाख किलोग्राम पैदा करने का संकल्प है।

खेती-बागबानी के अतिरिक्त पशु-पक्षी पालन भी यहां आय का एक साधन है। कम्यून के पास इस समय ११२ गायें, ४५०० सूअरियां, २०,५०० मुर्गियां, २,००० बत्तकें, ७२ मधुमक्खी के छत्ते, ११५० समूरी चूहे हैं। समूरी चूहे खरगोश के बराबर होते हैं। रेशम सा मुलायम और चमकीला एक समूरी चमड़ा २०० रुपयों में बिक जाता है। कम्यून के पास ५ ट्रैक्टर, ३ लारियां, गाड़ियों और हलों में जोतने के लिए ५०० से ऊपर घोड़े-खच्चर-गदहे हैं। यहां के खच्चर बहुत विशाल-काय थे। वे यहीं पैदा किये जाते हैं। कान्सू प्रदेश चीनी सेना के लिए बहुत भारी संख्या में घोड़े देता है। बिजली और हवा-चक्कियों से सिंचाई, की जाती है। पीतगंगा के अतिरिक्त सिंचाई के लिए बहुत से कूएं भी हैं। रासायनिक खाद भी डाली जाती है और लनचौ नगर का सारा मैला इसी काम आता है। अपने यहां मैला-गाड़ियों को देख कर हमें अपार मक्खियों और दुर्गन्ध का ख्याल आ जाता है। पर ६२ लाख की आबादी के पेकिङ में मैले की व्यवस्था देख कर मेरे दिल से यह ख्याल जाता रहा। पेकिङ का आधा मैला लारियों में शहर से ७-८ मील दूर ले जाया जाता है। वहां एक तिहाई मैला और दो तिहाई कूड़ा-कर्कट मिला कर उसे मिट्टी की मोटी तह से ढंकी ५०-६० गज लम्बी और ३-४ गज चौड़ी और ऊंची कब्रों में दफना दिया जाता है। "कब्रों" में ७-८ पोले बांस गाड़ दिये जाते हैं ताकि भीतर पैदा होनेवाली गैस विस्फोट न कर दे। ७२ दिन बाद कब्र खोल दी जाती है। किसान उन्हें ढोने के लिए अपनी गाड़ियां और ट्रकें लेकर पहुंच जाते हैं। बदबू का कहीं पता भी नहीं चलता। मक्खियों के अभाव के बारे में जब मैंने पूछा, तो बतलाया गया कि कब्र का तापमान इतना ज्यादा होता है कि उसमें मक्खी जी नहीं सकती। लनचौ के पाखाने की भी शायद यही व्यवस्था है।

खेती और पशु-पालन के अतिरिक्त चेनयाङ कम्यून का अपना उद्योग-धंधा भी है। १९५८ में फौलाद-लौहि बनाने में ३०, ईंट में ५० और सीमेंट में ३० कमकर लगे हुए थे। अध्यक्ष ने बतलाया कि

अगले साल यह संख्या दुगनी हो जायेगी। कम्यून की भूमि में पहाड़ भी हैं, जहां सीमेंट (चूने) के पत्थर मौजूद हैं। उसके पास लौह-धन नहीं है। पर कम्यून लनचौ के बेकार फेंके लोहे को जमा कर लाता है और उसी को पिघला कर सिलें बना देता है। कम्युनिस्ट शासन कायम होने के समय (१९४९) चीन सिर्फ डेढ़ लाख टन फौलाद बनाता था। १९५७ में वह ५३ लाख टन हो गया और १९५८ में १ करोड़ ७ लाख टन, अर्थात् एक साल में दुगना से भी अधिक। हमारे यहां के स्टेशनों और दूसरी जगहों जैसा लाखों टन फेंका गया लोहा-फौलाद चीन में कहीं नहीं मिलेगा, क्योंकि इसे राष्ट्रीय अपव्यय समझा जाता है। यही नहीं, लोहा बचाने के लिए तार और बिजली के खम्भे भी वहां लकड़ी और सीमेंट के बनाये जाते हैं। पेकिङ की ट्रामों और औटो बसों के तार भी सीमेंट के खम्भों पर लगते हैं। चीन में पिछले कुछ सालों में हजारों मोटर, रेल, मशीन टूल, विमान, ट्रैक्टर आदि के कारखाने कायम हुए हैं। वे भारी परिमाण में फौलाद की मांग करेंगे। यही सोच कर राष्ट्रपति माओ ने इस साल के मध्य में लौह यज्ञ का नारा दिया। साढ़े चार करोड़ की आबादी वाला एक होनान प्रदेश प्रति दिन ४० हजार टन लोहा बना रहा है। चीन का अधिकांश भाग पहाड़ी है, जहां लौह पत्थर बहुत सुलभ हैं। बड़े-बड़े कारखानों को स्थापित करने में बड़ी-बड़ी मशीनों, विशाल इमारतों तथा अधिक समय की आवश्यकता होती। चीन उन्हें भी स्थापित कर रहा है, और होनान व पाउथू के फौलाद नगर खड़े हो रहे हैं। पर वे एक साल में दूना फौलाद नहीं दे सकते थे, इसलिए माओ ने कहा : लोहा बनाने के पुराने ढंग को भी इस्तेमाल करो। इस तरह के चूल्हे बिना पूंजी के खड़े किये जा सकते हैं। इसका परिणाम यह हुआ कि कुछ ही दिनों में हर रेलवे स्टेशन पर लोहे के छोटे-बड़े चूल्हे जलने लगे।

कम्यून की परिषद के अध्यक्ष श्री सून और अनेक उपाध्यक्ष हैं। परिषद के सदस्य तथा कुछ और सदस्यों को मिला कर विभागों के संचालन के लिए कृषि, उद्योग, गृह-निर्माण, प्रतिरक्षा (मिलिशिया), शिक्षा, सार्वजनिक हित, प्रशासन, व्यापार आदि की समितियां हैं जिनके

क्रमशः ११, ३, ३, ३, ३, २, ६, ५ सदस्य हैं। सारे कमकर स्त्री-पुरुष ५ महाब्रिगेडों, ११५ ब्रिगेडों और अनेक दलों में संगठित हैं। एक बिग्रेड में १५० सदस्य होते हैं। इनके नाम और पदाधिकारी ही सैनिक जैसे नहीं हैं, बल्कि इनका सारा काम भी सैनिक अनुशासन के साथ होता है। कम्यून अपने सारे १७,३८० जनों को बिना मूल्य भोजन और जाड़े-गर्मी के वस्त्र देता है। सारे कम्यून में घर-घर के चूल्हों को हटा कर १२२ रसोइयां स्थापित की गयी हैं, जहां नाश्ता, मध्याह्न भोजन और शाम का भोजन तैयार मिलता है। चिकित्सा, शिक्षा, हजामत, धोबीखाना, सिनेमा आदि भी मुफ्त हैं।

हमारी बातचीत समाप्त हो रही थी। इसी समय दूसरे देखनेवाले आ गये। श्री सून बाहर फाटक तक पहुंचाने आये। नंगे पहाड़ों पर नजर दौड़ाते हम पुल पार हुए। एक ओर का नंगा पहाड़ अब चोटी तक छोटे-छोटे वृक्षों से ढंक चुका है, दूसरे भी अधिक समय तक नंगे न रह सकेंगे, यह निश्चित है।

मद्रास विश्वविद्यालय के प्रोफेसर स. चन्द्रशेखर ने चीन की ६ सप्ताह की यात्रा समाप्त कर चार कम्यूनों को देख कर १८ दिसम्बर को हाङकाङ में फर्माया : "मैंने एक भी चेहरा ऐसा नहीं देखा जिस पर प्रसन्नता के चिन्ह हों। ... कम्यूनों के नीचे चीन एक बड़ा चिड़ियाघर है। तीन बार भोजन मिलेगा, तुम्हें जान लगा कर काम करना पड़ेगा। लेकिन तुम्हें कोई स्वतन्त्रता नहीं रहेगी।" मैंने ६ कम्यूनों को देखा। वहां सबको उत्साही और प्रसन्नवदन पाया। लोग बड़े जोश के साथ काम करते हैं, क्योंकि वे अपने देश को कुछ ही वर्षों में दुनिया के अत्यंत समृद्ध देशों की पंक्ति में ले आना चाहते हैं। समृद्धि की ओर तेजी से आगे बढ़ती चीन की जनता को चिड़ियाघर का प्राणी कहना यही बताता है कि चन्द्रशेखर साहब अमरीका के सामने सुर्खुरू होकर लंबा कदम मारना चाहते हैं। उनके दिल में तो उसी समय आग लग गयी होगी, जब उन्होंने यह सुना होगा कि चीन में युनिवर्सिटी का चान्सलर भी सिर्फ २५० युवान (५०० रुपया) मासिक पाता है। प्रोफेसर साहब को तो ढाई सौ युवान नहीं, ढाई हजार डालर चाहिए!

२. लोनान कम्यून

चिन वंश ने सिर्फ २६ वर्ष (२३१–२०६ ई. पू.) शासन किया। पर इसी वंश ने इस महान् देश को वह नाम दिया, जिससे वह भारत और दुनिया के अधिकांश देशों में मशहूर है। रूस में चीन को किताई कहते हैं, जो कि खित्तन वंश का दिया हुआ नाम है। खुद चीनी लोग अपने देश को चुङह्वा और अपनी जाति को हान कहते हैं। आजकल हान और हान-भिन्न सभी चीन गणराज्य की जातियां चीनी हैं। सौभाग्य से चीन में जितनी जातियां बसती हैं, सबका चेहरा-मुहरा एक जैसा होता है, सिर्फ पोशाक से उनका अन्तर मालूम होता है। चीन की महा दीवार बनाने वाले चिन वंश को कम प्रतापी नहीं माना जा सकता। पर चीन की शक्ति और संस्कृति हान वंश के समय (२५–२२० ई.) बहुत आगे बढ़ी। बीच में ३१ वर्ष दूसरे वंशों ने शासन किया, जिनमें एक पश्चिमी हान वंश भी था, जिसके कारण महान हान वंश को पूर्वी हान कहा जाता है। शायद वर्तमान हान नाम में यह वंश भी कारण हो। इस वंश की राजधानी लोयाङ थी। ईसवी सन की आरंभिक दो शताब्दियों तक शासन करनेवाले इस वंश का काल चीन के लिए बड़ा महत्व रखता है। इसी वंश के सम्राट मिङ (५८–७५ ई.) द्वारा निमंत्रित होकर भारतीय बौद्ध भिक्षुक काश्यप मातंग और धर्म रत्न ६७ ई. में लोयाङ पहुंचे थे। वे एक सफेद घोड़े पर बहुत धर्म पुस्तकें अपने साथ लाये थे। लोयाङ नगर के बाहर उनके लिए चीन का प्रथम बौद्ध विहार बनाया गया, जिसका नाम सफेद घोड़े के कारण श्वेताश्व

बिहार (पे-मा-स्स) पड़ा। आज भी यह बिहार अच्छी स्थिति में है। हरी घास से ढंके पत्थर के दो गोल स्तूपों के भीतर इन दोनों भारतीय संस्कृति-दूतों के शरीर रखे हुए हैं। ह्रास होते-होते इस प्राचीन राजधानी की आबादी १९४९ में एक लाख तीस हजार रह गयी थी, जो बढ़कर अब चार लाख तीस हजार है। चीन का सबसे बड़ा ट्रैक्टर कारखाना यहीं बना है। लोयाङ एक बड़े औद्योगिक केन्द्र का रूप ले रहा है। पुराने ध्वंसावशेषों पर पंचमहले-सतमहले सौध बन रहे हैं। उनके गर्भ से इतिहास की कितनी ही अनमोल सामग्री निकल रही हैं।

२७—२८ और २९ अक्तूबर को भी अधिकांश समय मैंने लोयाङ देखने में बिताया। पता मालूम होने पर २९ को साढ़े आठ बजे सबेरे हम लोनान कम्यून पहुंचे। लोयाङ के पास सदानीरा किन्तु छोटी लो नदी बहती है। शायद इसी के कारण इसका नाम लोयाङ पड़ा है। लोनान तो अवश्य लो के कारण है, जिसका अर्थ है लो के दक्षिण। कम्यून का आफिस एक बड़े गांव लियनच्वांग में है, जो शहर से बहुत दूर नहीं है। संचालक लन साङ-शिङ २८ वर्ष के नौजवान और सातवीं कक्षा तक पढ़े हैं। सभी कम्यून संचालक मुझे सादगी की मूरत दिखलाई पड़े। श्री लन भी अपवाद नहीं थे। सूचना पहले ही मिल चुकी थी, इसलिए वह जानते थे कि आगंतुक कौन है। उन्होंने बड़े तपाक से हाथ मिलाया। चाय आयी। बात शुरू हुई। लन ने बतलाया : हमारा कम्यून १८ अगस्त को स्थापित हुआ। इसका अर्थ था कि उस तक दिन कम्यून को बने ४० दिन ही हुए थे।

चीन का यह भाग फरवरी १९४८ में कुओमिन्ताङ के शासन से मुक्त होकर कम्युनिस्ट शासन में आया था। उस समय लियनच्वाङ ग्राम में १२ जमींदार थे, जिनमें सबसे धनी के पास ८ एकड़ भूमि थी, अर्थात् वे अपने खेतों के मालिक किसान थे। २४० लोग कम या बेशी जमीन जोतनेवाले किसान थे। ३० खेतिहर मजूर थे। गांव की सारी जोती हुई भूमि २३० एकड़ थी, अर्थात् प्रति परिवार एक एकड़ भी नहीं पड़ती थी। जल्दी ही भूमि-व्यवस्था में सुधार हुआ— भूमि का उचित वितरण किया गया। १९५३ में यहां काम में सहकार शुरू हुआ, जिसमें पहले के

जमींदार शामिल नहीं हुए। चाहे जमींदार छोटे ही क्यों न हों, पर उनमें जमींदार होने का अभिमान वैसे ही था, जैसा हमारे यहां। १९५६ में सारा ग्राम सहकारी फार्म में परिणत हो गया। अब इसमें पुराने जमींदार भी शामिल थे। उन्होंने श्रम सहयोग के लाभ को अपनी आंखों देखा था। जनमत और कानून सहकारी फार्म के अनुकूल थे, इसलिए उनके रास्ते में रोड़ा नहीं अटकाया जा सकता था। लन का परिवार किसान था, छोटा किसान। उसमें तीन काम करने वाले व्यक्ति हैं। उन्होंने १९५७ में १३०० कार्य-दिन के लिए ३०० युवान (६०० रुपया) फार्म में कमाया। १९५८ में उनकी आमदनी ३५० युवान हुई। कम्यून स्थापित होने से पहले परिवार के पास साग-सब्जी के लिए कोला, कुछ मुर्गियां और सूअरियां थीं।

अगस्त में लियनच्वाङ आदि ११९ गांवों का कम्यून स्थापित हुआ, जिसमें पहले ५८ सहयोगी फार्म थे। सारे कम्यून की जनसंख्या ९८,९४४ (स्त्रियां ५५,०००) और परिवार २०,१३७ हैं। इनमें काम करनेवाले ३९,९४४ (स्त्रियां १७,६२६) हैं। कम्यून के पास २३,००० एकड़ खेत हैं, जो सारे दो-फसला हैं। इनमें ९५% धान के, बाकी पहाड़ी सूखे खेत हैं, जिनमें गेहूं, मक्की, कांगुन बोये जाते हैं। धान आदि के १६,३०० एकड़ में प्रति एकड़ ९० युवान (१८० रुपया) आमदनी हुई। आलू के ३५०० एकड़ में प्रति एकड़ ११५ युवान, कपास के २५०० एकड़ में प्रति एकड़ ९० युवान और सब्जी के ३३०० एकड़ में प्रति एकड़ १००० युवान की आमदनी हुई। जाड़ों को छोड़कर सब्जी खेत में कई बार बोई जा सकती है। पास के लोयाङ शहर में उसकी बहुत मांग है, इसलिए इसमें अधिक आमदनी होना स्वाभाविक है। इस साल (१९५८ में) सारी आय दो करोड़ युवान (चार करोड़ रुपया) हुई। अगले साल की योजना के अनुसार आय दूनी हो जायगी। आय में से ४०% कर्मियों में बांटा गया। यह सहकारी फार्म के समय की बात है। अब भोजन, दोनों मौसम की पोशाकें, घर, चिकित्सा, सिनेमा आदि निःशुल्क कर दिये गये हैं।

कम्यून के पास हल और गाड़ी के लिए ५० बैल, ३०० गदहे और

बहुत से घोड़े और खच्चर हैं। इसके अलावा रबड़ टायर की गाड़ियां और २५०० सुघरे लोहे के हल, दो ट्रैक्टर और २५ शक्तिचालित पंप भी उसके पास हैं।

कम्यून की फैक्टरियों में चुकन्दरी चीनी और मदिरा तैयार होती है। इस साल इनमें ३०,००० टन चीनी और १५,००० गैलन (दाम २,४०,००० युवान) शराब तैयार हुई। ६३ दर्जी-घर ६३ गांवों के कपड़ों को सीते हैं। चार गांव के घरों में बिजली लग चुकी है, शेष में भी जल्दी ही लगने वाली है। ८०% लड़के-लड़कियां १२८ स्कूलों में जाते हैं। उच्चतर विद्यालयों में १२०० छात्र हैं। शिशुशालाएं ३८० और बालोद्यान २२ हैं। शिशुशालाओं और सामूहिक रसोईखानों ने स्त्रियों को उत्पादक काम में सम्मिलित होने के लिए मुक्त कर दिया है। निरवलंब बूढ़े-बूढ़ियों के लिए सुख-निवास हैं। वहां उनके खाने-कपड़े का ही नहीं, सेवा करनेवालों का भी प्रबंध है।

सभी कमकरों को सैनिक आधार पर संगठित किया गया है। उनमें से ४७५० पुरुष कम्यून-सेना (मिलिशिया) में हैं।

कम्यून के शासन के लिए चुने हुए ५०० प्रतिनिधि हैं। प्रतिनिधि सभा साल में दो बार से अधिक नहीं बैठती। रोज-रोज के काम के लिए कम सदस्यों की परिषद है। श्री लन अपने अनुभव और सेवाओं के कारण एक लाख की जनता के सर्वोच्च अधिकारी (संचालक) निर्वाचित हुए। ६ उपसंचालक काम में सहायता करते हैं। विभागों के संचालन के लिए ८ समितियां हैं: १. उद्योग, २. कृषि, ३. व्यापार, ४. वित्त, ५. श्रम, ६. प्रतिरक्षा, ७. प्रशासन, और ८. पशुपालन।

कम्यूनों का काम सैनिक अनुशासन के साथ होता है। कम्यून के ३९,१९४ श्रमिक स्त्री-पुरुष सेना की तरह ही य्वान (ब्रिगेड), येनू (रेजिमेंट), लेन (कम्पनी), फै (प्लैटून) में विभाजित हैं। इनकी संख्या क्रमश: ६, ७१, २११ और ६२० है। इनके अफसर हैं: य्वान-चाक, येन-चाङ, लेन-चाङ, फै-चाङ। उप-य्वान-चाङ एक महिला हैं। ३० उप-येन-चाक, ६० लेन-चाङ और फै-चाङ में आधी स्त्रियां हैं। श्रमिकों में ४७५० पुरुष मिलिशिया (स्थानीय सेना) में शामिल हैं।

संचालक से पूछने पर मालूम हुआ कि अभी स्त्रियों का सैनिक संगठन नहीं बना है।

पशुपालन। उस समय ५० शूकरशालाओं में २००० सूअर थीं। चीनी लोग शूकर मांस के बड़े प्रेमी हैं। मांस के उत्पादन में सूअर जैसा उपयोगी कोई पशु नहीं है। वह साल में दो बार ब्याती है। ठीक से पालन करने पर प्रति सूअर साल में २२ बच्चे प्राप्त होते हैं। तीन-चार मास में हरेक का वजन आध मन के करीब हो जाता है, अर्थात् एक सूअर से साल में १० मन से अधिक मांस मिलता है। यहां के सूअरों में ५% शुद्ध हालैंडी थे। कृत्रिम गर्भाधान से उनकी संख्या बढ़ायी जा रही थी। शूकरशालाएं बहुत स्वच्छ रखी जाती हैं। भोजन में विष्टा शामिल नहीं है, इसलिए हिंदू शास्त्रों के अनुसार उन्हें अरण्य-शूकर की तरह ही भक्ष्य मानना होगा। ५० भेड़शालाओं में ७००० भेड़ें—सभी दुंबा—हैं। गायें १६ थीं, जो खटकने की बात नहीं थी, क्योंकि चीन में दूध पीने का रिवाज नहीं है। अस्पतालों और शिशुशालाओं में उसका प्रचार हो रहा है, जिससे आशा रखनी चाहिए कि हर कम्यून में गायों की संख्या हजारों तक होगी। पेकिङ के पास एक सरकारी फार्म में मैंने सैकड़ों हालैंडी गायों को देखा था, जिनमें हरेक २०–२५ सेर दूध देती थी।

भोजनशाला। २०,१३७ परिवारों (११६ ग्रामों) के भोजन के लिए ५२१ रसोई-घर हैं। हमने २०० जनों की एक भोजनशाला देखी। मध्याह्न के वास्ते दो तरकारियां, मोमो (चीनी रोटी) तथा कुछ और चीजें बन रही थीं। वहां के प्रधान ने बतलाया कि अभी हम महीने में सिर्फ दो बार मांस या मछली देते हैं। याद रखना चाहिए कि कम्यून की स्थापना हुए अभी ६ सप्ताह ही हुए हैं। फिर मांस पूरे ९८,९४४ लोगों के लिए बनाया जाता है। इस रसोई-घर में ६ स्त्रियां व २ पुरुष काम कर रहे थे। यही बात सभी रसोई-घरों की थी। सारे रसोई पकानेवालों की संख्या ४००० होगी। पहले प्रति परिवार एक स्त्री खाना पकाती थी। इस प्रकार लोनान के पूरे इलाके में २०,००० स्त्रियां केवल खाना पकाने में लगी रही होंगी। नयी व्यवस्था ने १६,००० नारियों को चूल्हे से मुक्त करके उन्हें उत्पादन कार्य में लगा दिया है। रसोई-घर की दीवार

के साथ लगे रैकों में चीनी के बड़े कटोरे, तस्तरियां, खाने की लकड़ियां रक्खी रहती हैं। निश्चित समय पर तीनों वक्त खाना तैयार हो जाता है। पीछे आनेवालों के लिए खाना काठ के बड़े बर्तनों में ढांक कर रख दिया जाता है। भोजन पकाने और रखने में काठ के बड़े तथा मोटे बर्तन इस्तेमाल किये जाते हैं। मोमो (फारे जैसी चीनी रोटी) भाप से पकायी जाती है। इसके लिए पानी खौलाने का सबसे नीचे का बर्तन धातु का होता है। ऊपर के बर्तन, जिनमें फारे रहते हैं, काठ या बांस के होते हैं। चीन में न तवे की रोटी खायी जाती है, न तंदूर की। भाप में पकी मोमो कम स्वादिष्ट नहीं होती। मोमो में एक सुभीता यह है कि चावल की तरह एक मन आटे की मोमो एक घान में बनायी जा सकती है। काठ के बर्तनों में ढंक कर रखा भोजन देर तक ठंडा नहीं होता। चीनी लोग पानी या भोजन कभी ठंडा नहीं खाते। रसोई-घर के आंगन में पीतल, आल्मोनियम आदि के बर्तनों का ढेर लगा था। ये बर्तन चार-छः व्यक्तियों के भोजन के लिए पर्याप्त थे। जब छोटे-छोटे चूल्हे विदा हो गये, तब इन बर्तनों का भी कोई उपयोग नहीं रह गया। इसलिए ये बर्तन कारखाने में गलाने के लिए एकत्र किये गये थे।

संचालक लन अपने उद्योगों में से लौह-उत्पादन का जिक्र करके ही सन्तुष्ट नहीं हुए, बल्कि उन्होंने अपने लौह चूल्हों को भी दिखाना चाहा। एक दिन पहले दो हजार से ऊपर गुहाबिहारों वाले लोङ-मिन को हम देख आये थे। भारत में कहीं पर्वत वक्ष में खोदे इतने अधिक बिहार नहीं हैं। उस समय हमने आसपास के निवासियों को कोयला ढोने में लगा देखा था। हजारों आदमी ठीक चींटियों की तरह कोयला ढो रहे थे। १२ से ६० वर्ष के नर-नारी इसमें जुटे थे। किसी की कांवर में १२-१५ सेर कोयला था, किसी में मन भर भी। उनके अपने कम्यून के पहाड़ में लोहा था, पर कोयला यहां गुहा-बिहारों की छाया में सुलभ था। खनक जमीन के नीचे से खोद कर ऊपर कोयले का ढेर लगा रहे थे। दूसरे लोग उसे ढोने में लगे हुए थे। हमारे देश में कोयला का मालिक अलग होता है। उसे अपने लाभ को देखना होता है, इसलिए राम-नाम की लूट जैसी इस लूट को वह कैसे बर्दाश्त करता। सेर-छटांक का हिसाब, उसका

दाम चुकाना, रसीद लेना, फिर कितने ही दरबानों की नोच-खसोट और देख-रेख की दिक्कत झेलने पर किसान-पुत्रों को कोयला मिलता। यहां ऐसा कोई झंझट नहीं था। फौलाद की उपज को एक साल में दूना करना था, इसलिए किसी अड़चन को बर्दाश्त नहीं किया जा सकता था।

हमारी कार लोयाङ से १३ किलोमीटर पर अवस्थित लोङ-मेन नदी के किनारे पहुंची। अस्थायी पुल के पार जाने में ही आटे-चावल का भाव मालूम होने लगा। कोयले से भरी ट्रकें और कोयला ढोने वाली मानव चीटियां पुल और रास्ते पर पटी हुई थीं। पुल अस्थायी था, नदी पार जाने पर कठिनाई और अधिक हो गयी, क्योंकि नदी के इस किनारे के रास्ते पर भी ढुलाई लगी हुई थी। कार की गति छकड़े के बराबर भी नहीं रह गयी। चार-चार कदम पर रुक जाना पड़ता था। ऊपर से सड़क को वर्षा के पानी और पहियों ने दलदल बना दिया था। कुछ दूर बढ़ने पर लौटने का खयाल आया, तो अब लौटने का अवसर नहीं रह गया था। किसी तरह पांच मिनट के रास्ते को पौन घंटे में तै करके हम कोयले के लगे ढेरों के पास एक छोटे से मैदान में पहुंचे। यहां छः लोहा बनाने के चूल्हे खड़े थे। ये हलवाई के चूल्हों जैसे नहीं थे। ये इतने बड़े थे कि एक घान में २०–३० मन लोहा बनता था। अग्निरक्षक ईंटों का १२–१४ फुट ऊंचा तथा करीब उतने ही घिरावे का चूल्हा एक बार दो-तीन टन लौह-घन (पत्थरमिश्रित लोहा) लेता। उसे गलाने के लिए निश्चित परिमाण में कोयला और चूना उसमें मिलाया जाता है। हवा (अक्सीजन) डालने के लिए बिजली का पंखा लगा हुआ था। एक घंटे में लोहा पिघल कर भारीपन के कारण नीचे चला जाता है। फिर पेंदी का मुंदा सूराख तोड़ दिया जाता है, और पिघले लोहे की लाल धार निकल पड़ती है। हमारे सामने सूराख का पर्दा तोड़ा जा रहा था। संचालक ने यहां बने लोहे का एक छोटा टुकड़ा हमें दिया।

एक लाख की आबादीवाले लोनान कम्यून को हमने देखा। संचालक और दूसरे कम्यूनियों के उत्साह से हम बहुत प्रभावित हुए। यह तो कम्यून स्थापित होने के ६ हफ्ते बाद की ही बात थी। इसमें सन्देह नहीं नहीं कि वर्ष-दो-वर्ष बीतने पर वह बहुत आगे चला जायगा।

३. श्वीश्वे कम्यून

चीन की राजधानी पेकिङ (बेइजिङ) होपेइ प्रदेश में है। इस प्रदेश की आबादी साढ़े तीन करोड़ से अधिक है। होपेइ का अर्थ है नदी से उत्तर। नदी से यहां मतलब है—ह्वाङहो। ग्यारहवीं सदी से पेकिङ चीन की राजधानी रहा, इसलिए उसका महत्व समझा जा सकता है। पेकिङ और थ्यानचिन होपेइ के भाग होते हुए भी, शङहै के साथ इन तीनों शहरों को अलग प्रान्त सा माना गया है। शङहै की आबादी अस्सी लाख और पेकिङ की ६२ लाख है। ये तीनों नगर चीन के सबसे बड़े औद्योगिक केन्द्र हैं। जून-जुलाई में मेरी यात्रा पेकिङ के आस-पास तक ही सीमित रही। सितम्बर में दो कम्यून देखे। पता लगा कि पेकिङ के पास के जिले पाउदिन में एक पूरे सबडिवीजन (तहसील) का कम्यून बना है। मैं उसे देखने के लिए उत्सुक हो गया।

१६ अक्तूबर को पौने चार घंटे की रेलयात्रा करके हम पाउदिन स्टेशन पर उतरे। पत्नी और दोनों बच्चों के अतिरिक्त चार और साथी भी थे, जिनमें श्री चेङ और श्री चाउ हमारी यात्राओं में दुभाषिया और मार्गदर्शक रह चुके थे। यहां से श्वीश्वे २० किलोमीटर के करीब रहा होगा। वैसे तो कम्यून की सीमा के भीतर ही पेकिङ से आनेवाली लाइन पर चार स्टेशन हैं, पर कम्यून में अभी अच्छा होटल नहीं बना है। अतिथि को तकलीफ होगी, यह सोचकर हमें जिले के हेडक्वार्टर में लाया गया। स्टेशन पहुंचने तक ढाई बज गये। इस समय कम्यून जाने का अधिक उपयोग नहीं हो सकता था, इसलिए उस दिन वहीं रहना हुआ।

हाल ही में बना दोमंजिला होटल, बहुत ही साफ और सुन्दर था। पाउदिन की आबादी चार लाख अस्सी हजार थी, पर चीन के लिए वह एक कस्बा जैसा था।

समय का कोई उपयोग होना चाहिए, यह कहने पर वे हमें होटल के समीप नार्मल स्कूल में ले गये। हमारे यहां की तरह यह स्कूल मैट्रिक पास लड़के-लड़कियों को प्रशिक्षित कर अध्यापक-अध्यापिका बनाता है। इसमें १००० छात्र (३०० छात्राएं), ६० अध्यापक (४० महिलाएं) थे। पढ़ाई दो और तीन वर्ष की थी। इस विद्यालय की दो और शाखाओं में ३००० छात्र पढ़ते हैं, जो जिले के दूसरे कस्बों में हैं। छात्रों को १० युवान (२० रुपया) मासिक छात्रवृत्ति मिलती थी। इस साल उसे बन्द कर दिया गया। अब स्कूल की फैक्टरियों में काम करके छात्र उससे दूना प्राप्त कर लेते हैं। चीन की शिक्षा-विधि में उत्पादक शारीरिक श्रम अनिवार्य है। कालेजों और विश्वविद्यालयों के छात्रों के लिए साल में १ मास विश्राम, ३ मास शरीरिक श्रम और ८ मास पढ़ाई के होते हैं। १६५८ से इस नियम का बहुत कड़ाई से पालन किया जाता है। इसीलिए नार्मल स्कूल में फैक्टरी कोई अचरज की बात नहीं थी। पहली फैक्टरी दो या तीन कमरों की देखी। प्रिंसपल ने बतलाया कि इसमें हमने ७ युवान की (अर्थात १४ रुपये की) पूंजी लगायी। ३० विद्यार्थी यहां अपना समय बारी-बारी से लगाते हैं। इसका काम है खाद बनानेवाले कीड़े पैदा करना। घटिया किस्म के सेव की लेई बनाकर उसे पूर्णतया कृमिरहित कर उसमें खाद-कृमि का जीवन डाल दिया जाता है। कृमि अनुकूल तापमान में प्रति क्षण एक से दो, दो से चार, चार से आठ होते हुए बढ़ने लगते हैं। समय के हिसाब और सूक्ष्मवीक्षण से देखने पर मालूम हो जाता है कि लेई कार्योपयोगी हो गयी या नहीं। फिर लेई को आध पाववाली चौड़े मुंह की शीशियों में बन्द करके मुहर और लेबिल लगा दिया जाता है। खाद के कारखाने इन शीशियों को पहले से ही खरीदने के लिए तैयार कर लिये गये हैं। प्रति मास १००० युवान की लेई बिक जाती है। मेरे देहरादून के एक मित्र ने कालेज के छात्रों की आर्थिक दुरवस्था को देखकर कहा : क्या थोड़ी पूंजी लगाकर और

इनसे काम लेकर इन्हें स्वावलम्बी नहीं बनाया जा सकता ? मैंने कहा कि अव्वल तो कालेज के छात्र मजदूर की तरह दो-तीन घंटा काम करने के लिए तैयार नहीं होंगे। फिर उनके हाथ से बनायी गयी चीजों को खरीदने वाले दूकानदार या ग्राहक बराबर नहीं मिलेंगे। छात्र यह भी खयाल कर सकता है कि जब मेरा साथी एक घंटे के ट्यूशन से ३० रुपया महीना कमाता है, फिर मैं मिट्टी-कीचड़ में तीन घंटा रोज क्यों खटने जाऊं ? हमारी सारी व्यवस्था ही ऐसी है।

नार्मल स्कूल में १० फैक्टरियां थीं। इनमें प्लास्टिक के खिलौने, लोहे के पुर्जे, हथियार, फर्नीचर, चीनी बर्तन आदि बनाये जाते थे। सभी पूरे लाभ के साथ चल रहे थे। यहां के प्रशिक्षित तरुण गांवों की पाठशालाओं में अध्यापक होंगे, जहां उनके इस ज्ञान का पूरा उपयोग होगा। नार्मल स्कूल की छात्र संख्या एक हजार सुनकर आश्चर्य करने की जरूरत नहीं। वहां के कृषि कालेज में २००० छात्र थे और उसके पास १६,००० एकड़ खेत और बगीचे की जमीन थी। हजार एकड़ तो केवल साग-सब्जी के खेत थे। एक एकड़ गेहूं के खेत में पौने पांच टन (१३३ मन) पैदावार हुई थी और कपास ६ टन (बिना बिनौले की रुई २ टन) प्रति एकड़, शकरकन्द २४ टन (५७२ मन)। एक कपास के पौदे में २०० कलियां थीं। आलू के पौदे में टमाटर की कलम लगी थी। ऊपर टमाटर के फल लगे हुए थे और नीचे जमीन के भीतर आलू। शकरकन्द पर भी इसी तरह दूसरे फल की पैबन्द थी।

चीन में फसलों की उपज के आंकड़ों को देखकर आश्चर्य होता है। कितने ही उस पर विश्वास करने के लिए तैयार नहीं होंगे। पर वह परम सत्य है। १९५८ में धान की उपज निम्न सहकारी फार्मों (अब कम्यूनों) में इस प्रकार हुई :

ल्येनपान	१७'४१८ टन	२८७ मन	प्रति एकड़
क्वेइहूं	२५'८८२ टन	७२४ मन	,,
छुङक्वाङ	३१'७८८ टन	८९० मन	,,
छाङफाङ	४६'०८० टन	१२९० मन	,,
क्वेनक्वो (हूपे)	११०'८६८ टन	३१०४ मन	,,

यह नमूने के खेतों की उपज है, यह ठीक है; पर जिले और प्रदेश की औसत उपज भी बहुत अधिक है :

श्याग्रोकान जिला	५.२६२ टन	१४७ मन प्रति एकड़
ग्रानह्वेइ प्रदेश	३.००६ टन	८४ मन ,,

१७ अक्तूबर को नाश्ता करके ८ बजे के बाद हम मोटर से श्वीश्वे कम्यून के लिए रवाना हुए। इसे नाश्ता नहीं भोजन कहना चाहिए। चीन में अपराह्न में जलपान नहीं किया जाता। चाय अर्थात हरी पत्ती का रस बिना दूध या चीनी के दिन भर चलता रहता है। तीनों समय भर पेट भोजन किया जाता है। सड़क अच्छी पक्की थी। कार्यालयवाले गांव में पहुंचने में एक घंटा भी नहीं लगा। कम्यून के संचालक श्री ली विम-फाउ ने स्वागत किया। उनकी आयु ३४ वर्ष की थी, पर लगते थे पच्चीस-छब्बीस के। उन्होंने कम्यून का परिचय देते हुए बताया : हमारा कम्यून उत्तर से दक्षिण ६० किलोमीटर लम्बा और पूरब से पश्चिम १२ किलोमीटर चौड़ा है। यहां चार रेलवे स्टेशन और २६२ गांव हैं। इनमें दो कस्बे जैसे बड़े गांव भी हैं। तीन नदियों में से एक में बारहो महीने पानी रहता है। कम्यून के पश्चिम में उसका अपना थाइहाङ पर्वत है। पूरब की ओर सीमा पर एक बहुत विशाल सरोवर दूसरे कम्यून का है। कम्यून की जनसंख्या ३ लाख २० हजार है। काम करनेवाले १ लाख १० हजार हैं, जिनमें आधी स्त्रियां हैं।

कम्यून की सारी भूमि ७६५ वर्ग-किलोमीटर है।

कम्यून का कार्यालय जिस गांव में है, वह काफी बड़ा कस्बा जैसा मालूम होता है।

यह इलाका स्वतंत्रता के संघर्ष में आगे रहा था। मंचूरिया को जापान ने १९३१ में ही ले लिया था। १९३७ में उसने सारे चीन पर हाथ साफ करना चाहा। सबसे पहले होपे की बारी आयी। उसी समय पाउदिन पर भी उसका अधिकार हो गया, जो वर्षों तक रहा। लेकिन जापानियों का शासन सिर्फ रेलवे लाइनों पर था। पाउदिन के गांव कम्युनिस्ट छापेमारों के प्रभाव में रहकर लगातार जापानियों का विरोध करते रहे। जापानी गांवों को जला देते, लोगों की निर्मम हत्या

करते, पर इससे लोगों ने संघर्ष नहीं छोड़ा। पाउदिन के पहाड़ों और खोहों में छिपे कम्युनिस्ट छापेमारों ने एक क्षण के लिए भी आक्रमणकारियों को चैन से नहीं रहने दिया। उनकी निर्भीकता और कुर्बानियों ने लोगों के दिलों में एक ओर निराशा को घर करने नहीं दिया, तो दूसरी ओर उसने कम्युनिस्टों के प्रति लोगों में अपार श्रद्धा पैदा कर दी। चीन में जापानियों के साथ संघर्ष सिर्फ कम्युनिस्टों और उनके नेतृत्व में जनता ने किया। च्याङ काई-शेक एक बार भाग कर जब चुङकिङ पहुंच गया, तो उसका ध्यान अपनी शक्ति को अक्षुण्ण रखकर युद्ध के बाद कम्युनिस्टों को खतम करने पर था। लेकिन जनता ऐसी बेवकूफ नहीं थी। वह देख रही थी कि देश के लिए कौन ज्यादा बलिदान कर रहा है। इसीलिए युद्ध के बाद अमरीका की अपार सहायता, आत्म-समर्पण करती जापानी सेना के सारे युद्ध-साधनों एवं उनकी छोड़ी भूमि पर अधिकार पाने के बावजूद च्याङ ने नहीं, बल्कि जनता की मदद से कम्युनिस्टों ने विजय प्राप्त की और च्याङ को भागकर फारमोसा में अमरीकी छत्रछाया में शरण लेनी पड़ी।

जब चीन में कम्युनिस्ट शासन स्थापित नहीं हुआ था, उस समय भी (१९४७ में) यह इलाका कम्युनिस्टों के अधिकार में था। १९४७ में ही यहां भू-व्यवस्था में सुधार हुआ। जमींदारों की फालतू भूमि बेजमीन लोगों में बांट दी गयी। १९४९-५१ में अपने खेतों को अलग रखते हुए भी किसान काम करने में सहयोग के रास्ते पर चलने लगे। इसके लाभों को देखकर उनके मन में कम्युनिस्टों के नेतृत्व में अधिक विश्वास बढ़ा। १९५२ में सहकारी खेती आरम्भ करने में यह इलाका प्रथम रहा। छोटे सहकारी फार्मों की जगह कई गांवों का सहकार उन्होंने स्थापित किया। १९५८ के मध्य में जब कम्यून का आन्दोलन शुरू हुआ, तो श्वीश्वे ने अगस्त महीने में अपना कम्यून स्थापित किया।

सारे कम्यून में २६०० नलकूप हैं। तीन नदियों पर नियंत्रण करके उनके जल का उपयोग हो रहा है। बांध बांधकर बनायी गयी एक जलनिधि ७००० वर्ग-किलोमीटर के रकबे में फैली हुई है। पहाड़ों में ५० जलनिधियां बनी हैं और दूसरी जगहों में १०६।

कम्यून के अधिकांश मकान स्वच्छ पर कच्चे और मिट्टी की छत-वाले हैं। गलियों और सड़कों पर भी कहीं कूड़ा-करकट देखने में नहीं आता। दीवारें चूने से सफेद की हुई थीं। थोड़ी देर बात करने के बाद हम खेतों की ओर गये। कपास के खेत में कुछ पौदों के ऊपर फूस की छत डाली जा रही थी। इस कपास को माओ त्से-तुङ ने देखा था। सारे खेत के पौदे इतने ऊंचे थे कि उनके भीतर आदमी डूब जाता। कृषि में कितनी सफलता मिली है, यह इसीसे मालूम होगा कि जहां पहले उपज २४०—२७० किलोग्राम प्रति एकड़ थी, वहां इस साल औसत उपज ६०० किलोग्राम हुई। अगले साल इसे दूना करने का संकल्प है। कम्यून की खेती में गेहूं की प्रधानता है। कपास में चीन स्वावलम्बी है, पर वह दूसरे देशों को भी सस्ता और बढ़िया कपड़ा पहनाना चाहता है। मिस्र और सूडान जैसे उत्तम कपास पैदा करनेवाले देशों को अधिक और निश्चित लाभ पहुंचाने के लिए उनकी कपास वह खरीद लेता है। अधिक नफा लूटनेवाले देशों को इससे जरूर हानि पहुंची है और वे चीन के बढ़ते उद्योग से घबराने लगे हैं।

इवीश्वे कम्यून छोटे-बड़े गांवों का है। इसका यह अर्थ नहीं कि उसकी जीविका केवल कृषि पर अवलंबित है। उसकी योजना में लौह-निर्माण, नकली रेशम, मशीन-निर्माण, रासायनिक खाद, आटा-चावल मिल, शराब-चीनी की फैक्टरी, सीमेंट कारखाना, कपड़ा मिल, आहार कारखाना, आदि शामिल हैं, जिनमें कितने ही स्थापित हो चुके हैं। काम करनेवाले सैनिक ढंग से संगठित रेजिमेंट, बटालियन, कम्पनी, प्लैटून आदि में विभक्त हैं। इनके अफसरों को पल्टन की तरह ही कर्नल, मेजर, कप्तान, लेफ्टीनेंट, सर्जेन्ट आदि नामों से पुकारा जाता है। हमारे यहां के अनेक व्यक्ति इसे रेजिमेंटेशन कह कर चीन को बदनाम करना चाहते हैं और कितने ही वैयक्तिक स्वतंत्रता के अपहरण पर आंसू बहाते हैं। एक जन-गणना प्रवीण भारतीय को तो चीन में कहीं हंसता चेहरा ही नहीं दिखाई पड़ा। जाहिर है, ऐसे लोग साम्राज्यवादी प्रचार के शिकार हैं। सैनिक रूप में कर्मियों का संगठन और उसी तरह अनुशासनबद्ध होकर काम करना वैयक्तिक स्वतंत्रता के अपहरण के लिए नहीं, बल्कि श्रम

और समय को अधिक उत्पादक बनाने के लिए है। वहां अपनी हर समस्या को हल करने के लिए लोग उसी तरह दिलोजान से संघर्ष करते हैं, जैसे युद्ध के मौके पर सेना। सचमुच उसे वे मोर्चा ही कहते हैं। भारतीय किसानों की तरह ही चीनी किसान ९ वर्ष पहले तक साल के नौ महीने बेकार रहते थे। अब छुट्टी के दिनों को छोड़ साल भर उनके पास काम है। दो हाथ गहरे तह-पर-तह बिछे खादवाले खेतों में गेहूं प्रति एकड़ तीन-चार टन से भी अधिक पैदा होता है। किसानों की पल्टन एक-एक जगह हजारों की संख्या में खेत खोदने में लगी दिखाई देती है। इतनी गहरी खुदाई कुदाल या फावड़े से नहीं हो सकती, इसलिए बेलचे से काम लेना पड़ता है।

कम्यून केवल कृषि और उद्योग तक ही अपने कर्तव्य की इतिश्री नहीं समझता। अपने सवा तीन लाख नागरिकों की वही सरकार है। वहां उसके अलावा दूसरी कोई अदालत नहीं है, न मजिस्टेट, न पुलिस। उसके पास स्त्री-पुरुषों की ५० हजार की मिलिशिया है, जो देश रक्षा के लिए मैदान में उतरने के वास्ते हर वक्त तैयार रहती है। हम जब दूसरी बस्ती से लौट रहे थे, उस समय सौ से ऊपर स्त्री-पुरुष खेत में काम करते दीख पड़े। उनकी बंदूकें विस्तृत खेत की एक मेड़ पर एक-दूसरे के सहारे खड़ी थीं। कम्यून के और उप-कम्यून के संचालक भी हमारे साथ थे। दोनों की पोशाक बिल्कुल साधारण किसान जैसी थी। उनको देख कर कोई नहीं कह सकता कि ये ५० हजार सेना के जनरल और दस हजार सेना के कर्नल हैं। उनकी बुद्धि असाधारण थी और सेवा एवं त्याग भी। इसी के बल पर वे इस पद पर पहुंचे थे। बात करते और प्रश्नों का जवाब देते समय मैंने उनके मुस्कराते चेहरे को स्वयं अपनी आंखों से देखा। वहां मैंने सभी तरुण-तरुणियों को प्रसन्नवदन देखा। लोगों की बेतकल्लुफी को देख कर गंभीरता की कमी की बात भले कोई कह सकता है, पर उनमें हंसी-खुशी का अभाव तो हमारे देश के जन-गणना विशेषज्ञ को ही दिखाई पड़ा होगा। खेत के पास से जाती बहुत चौड़ी सड़क पर हमारी गाड़ी रुकी। उपसंचालक के संकेत पर खेत का काम छोड़ सभी ने दौड़ कर अपनी बन्दूकें उठा लीं और सड़क के सामने

आधे भाग में खड़े हो वे सैनिक कवायद करने लगे। कम्यून की मिलिशिया कितनी प्रशिक्षित है, इसका हमें पता लगा। यह सड़क दो ही चार दिन पहले बनी थी। पचास हजार हाथ जहां लग जायें, वहां दस-बीस मील की सड़क बनने में क्या देरी लगेगी? किसी पूंजीवादी देश में तो जमीन को मालिक से लेने में ही साल भर लग जाते। यहां सभी भूमि गोपाल की थी। दोपहर का भोजन कम्यून भोजनशाला में हुआ। वहां सौ से अधिक आदमियों के बैठने के लिए मेज-कुर्सियां थीं। शायद ये अतिथियों के लिए रही हों। भोजन दस-बारह प्रकार के थे। कछुए का मांस पहली बार खाया और मछली समझ कर, नहीं तो शायद उसकी दुर्गंध मालूम होती। मछली-मांस के अतिरिक्त कई प्रकार की सब्जियां भी थीं। शकरकन्द चीन में एक एकड़ में १०० टन (२८०० मन) पैदा हो रहा है। हमारे यहां उसे आग या बालू में भून कर अथवा उबाल कर खाते हैं। यहां उसे चीनी की चाशनी के साथ तैयार किया गया था और खाने में बहुत स्वादिष्ट मालूम होता था। चावल और मोमो (रोटी) भी थी।

भोजन के बाद हमें दूसरे गांव में जाना पड़ा, जो छ-सात मील पर रहा होगा। स्टेशन तक पीछे लौट कर रेलवे लाइन पार हो हम नयी सड़क से चले। यह सड़क भी दो ही चार दिन पहले १६ फुट से ४०-५० फुट कर दी गयी थी। इस बस्ती के भी सारे घर पुराने थे। गलियां संकरी थीं। कम्यून का एक नया नगर यहीं बसनेवाला है।

वही प्राकृतिक साधन यहां थे, जो हमारे यहां भी दुर्लभ नहीं हैं। पर यहां का किसान जहां यह कह सकता है कि अगले साल इन सुदामा की झोंपड़ियों की जगह आप महल खड़े देखेंगे, वहां हमारा किसान इसका ख्वाब भी नहीं देख सकता। ईंट, सीमेंट, कोयला, लोहा इनके अपने कम्यून में हैं। काम करनेवाले कमकर, राजगीर और इंजीनियर भी हैं। फिर महल खड़ा करने में क्या देर लग सकती है। पूंजीवाद के चारण इसे गुलामी कहते हैं। वे ऐसा ही हमेशा से कहते आये हैं।

कम्यून की स्थापना हुए उस समय दो महीने भी नहीं हुए थे। हां, इससे पहले सफल सहयोगी फार्मों का तजुर्बा उनके पास जरूर था।

कम्यून का प्रबंध। कम्यून के प्रबंध के लिए १८ वर्ष के ऊपर के नर-नारियों द्वारा निर्वाचित एक सम्मेलन है, जिसके ३०० सदस्य हैं। वह साल में एक ही दो बार बुलाया जाता है। रोज-रोज के काम को चलाने के लिए सम्मेलन ने १६ सदस्यों की परिषद निर्वाचित की है। इसमें एक संचालक और सात उप-संचालक भी सम्मिलित हैं। कम्यून सात उप-कम्यूनों में विभक्त है, जिनके संचालक ही कम्यून के उपसंचालक होते हैं। एक होशियार उप-संचालक हमारे साथ थे। मैं उनके सादे भेष और चेहरे को देखता, फिर ख्याल करता कि यह करीब आधे लाख लोगों का महाशासक है, दस हजार नागरिक सेना का सर्वोपरि अफसर और मजिस्ट्रेट है। हमारे यहां भी नागरिक सेना संगठित की गयी है और वह भी अपने अनुशासन एवं सैनिक अभ्यास में कम नहीं; पर जहां कम्यून के नागरिक सैनिक 'कम खर्च बालानशीन' हैं, वहां भारत की नागरिक सेना पर अनावश्यक भारी खर्च के लिए दरिद्रतम जनता की गाढ़े पसीने की कमाई को स्वाहा करना होता है। कम्यून को नागरिक सेना की वर्दी पर एक पैसा भी खर्च नहीं करना पड़ता। १ अक्तूबर को राष्ट्रीय दिवस पर बीसियों लाख के जलूस में वे हजारों की संख्या में इसी वेष-भूषा में सम्मिलित होते हैं। भारत के नागरिक सैनिक के लिए फौजी तड़क-भड़कवाली वर्दी का होना जरूरी माना जाता है।

कम्यून में भिन्न-भिन्न विभागों की दस समितियां हैं। उदाहरण के लिए : १. उद्योग-संचार; २. कृषि-जलसंरक्षण; ३. वित्त-खाद्य; ४. शिक्षा-संस्कृति-स्वास्थ्य; ५. प्रशासन-कानून-पुलिस; ६. नागरिक सेना (मिलिशिया); ७. पशु-पालन; ८. श्रम-कल्याण; ९. आमदनी का वितरण; १०. महिला कल्याण। प्रत्येक समिति के संचालक, उप-संचालक और क्लर्क होते हैं। इनके अतिरिक्त कम्युनिस्ट पार्टी, योजना समिति, कार्य निरीक्षण समिति, प्रधान कार्यालय, तरुण कम्युनिस्ट लीग आदि संस्थाएं भी काम में सहयोग देती हैं।

आखिरी चीज हमने जो देखी, वे थे लोहे के भट्ठे। यहां बड़ी भारी संख्या में बड़े-बड़े कारखाने पिछले कुछ सालों में बने हैं। सिर्फ ट्रैक्टर बनाने के हाङ्चौ, नानकिङ, हार्बिन्न, शिआन, फूच्यान, पाउथू के

बड़े-बड़े कारखाने बने हैं। मोटर के कई कारखाने भी काम करने लगे हैं। कपड़ा बुनाई की मशीनें, सिलाई की मशीनें, रेडियो मशीनें, आदि कई हजार तरह के यंत्र चीनी कारखानों में बनने लगे हैं। इनका कच्चा साधन फौलाद है। यद्यपि १९४९ में उत्पादित डेढ़ लाख टन फौलाद की जगह १९५७ में ५३ लाख टन फौलाद पैदा करना असन्तोष की बात नहीं थी, पर सन्तोष ही तो कारखानों की भूख नहीं मिटा सकता था। इसीलिए १९५८ में १ करोड़ दस लाख से ऊपर फौलाद बनाया गया। बड़े कारखानों के भरोसे यह काम इतनी जल्दी नहीं हो सकता था, इसलिए कुटीर उद्योग प्रणाली का सहारा लेना पड़ा। कम्यून के उन भट्ठों को हमने देखा जो स्टेशन के पास थे। हमारे देश में तो पहले स्टेशन के हाते का इस्तेमाल करना ही मुश्किल होता। लाइन के पार हलवाई के चूल्हों की तरह के हजारों चूल्हे अब बेकार पड़े थे। सुलभ बिजली द्वारा चालित पंखों की सहायता से अब बड़े-बड़े भट्ठे खड़े किये गये जिनमें एक बार में एक टन या अधिक लोहा तैयार किया जा सकता था। लाइन के इधर कई बड़े-बड़े भट्ठे काम कर रहे थे और कितने ही खड़े किये जा रहे थे।

साल भर में फौलाद का उत्पादन दूने से अधिक (सन १९५७ में ५३ लाख टन से १९५८ में १ करोड़ ७ लाख टन) करना है, इस संकल्प को चीन के हरेक व्यक्ति ने बड़ी गम्भीरता से लिया; और साल के अन्त में एक करोड़ दस लाख टन तक पहुंचाकर उसे सफल भी बनाया। सबसे अधिक ये भट्ठे कम्यूनों ने स्थापित किये। भट्ठे के पास फूस के झोपड़े में लोह-फौलाद प्रदर्शिनी लगी हुई थी। इसमें लोहे और फौलाद बनाने के सभी कच्चे माल दिखलाये गये थे। फोटो भी टंगे थे। इस सफलता की गूंज शायद हमारे देश के कर्णधारों के कानों तक भी पहुंची। भारत सरकार अब चीनी धातु कुवाई विधि और फौलाद निर्माण कुटीर उद्योग को देखने के लिए दो प्रतिनिधि मंडल चीन भेज रही है। पर चीन का ढंग और सफलता हमारे यहां व्यवहार का विषय तब तक नहीं बन सकता, जब तक यहां रिश्वत और चोरबाजारी का दौरदौरा है, जब तक ऐसे ही लोगों के लिए इस देश का शासन चल रहा है, जब

तक भाई-भतीजों-दामादों को बड़ी नौकरियों और ऊंचे पदों के योग्य देखा जाता है और योग्यता की कहीं पूछ नहीं होती; और जब तक इन सभी बातों के समर्थक और सदाचार का भाषण देनेवाले हमारे सर्वेसर्वा बने हुए हैं। सभी जानते हैं कि कितने ही कुटीर उद्योग यहां इसीलिए सफल नहीं होते, क्योंकि उसमें बनी चीजों की खपत नहीं होती, वे पूंजीपतियों के कारखानों में बने माल का मुकाबला नहीं कर पातीं। सस्ता माल चाहे गुण में कुछ कम भी हो, बाजी मार ले जाता है। शङ्है में अपने भारत ब्लेड को देखकर मैं आंख मलने लगा। हां वह भारत ही था। दुनिया में कोई ब्लेड इतना सस्ता न होगा, और गुणों में जमीन-आसमान का अन्तर भी नहीं। इसीलिए वह चीन के शङ्है नगर में पहुंच गया था। लौह-फौलाद कुटीर उद्योग द्वारा कुमाऊं-गढ़वाल की गरीबी-भुखमरी दूर हो सकती है, क्योंकि वहां हर जगह लोहे की खानें पड़ी हैं। पर बाजार में आने पर उस फौलाद को ताता जैसे सस्ते फौलाद पैदा करनेवाले कारखानों के माल से मुकाबला करना पड़ेगा। चीन में सभी कारखाने राष्ट्र के हैं, इसलिए वहां मुकाबले का कोई सवाल ही नहीं है। फिर चीन अपने औद्योगीकरण में लकीर का फकीर नहीं है। वहां से हमारे यहां के ताजा दिमागवाले नौजवान ही कुछ सीख सकते हैं, खूंसट दिमागवाले बूढ़े विशेषज्ञ नहीं। लेकिन बूढ़े लोग तो बूढ़ों को ही वहां भेजेंगे।

कम्यून के संचालक ने प्रसाद रूप में अपने "कारखाने" में बने लोहे का एक टुकड़ा प्रदान किया। बहुत साफ-सुथरा, सीमेंट के फर्श और चौतरों वाला कम्यून का स्नानागार गांव जैसा नहीं मालूम होता था। एक कमरे में एक बार दो दर्जन आदमी नहा सकते थे। गर्म-ठंडा पानी तथा विश्राम करने का इन्तजाम भी था। अभी एक ही गुसलखाने को बारी-बारी से स्त्री-पुरुष इस्तेमाल करते थे।

कम्यून का इतिहास इस प्रकार है। लोगों ने १९५७–५८ के जाड़े और वसन्त में सात महीने तक सिंचाई के बांध पर जुट कर काम किया। फलस्वरूप २२६ बांध जलाशय और २४०० कुएं तैयार हो गये। इसी का फल था कि दस महीने के अवर्षण पर भी किसानों ने बहुत अच्छी

फसल काटी। ४७,८५५ टन गेहूं पैदा हुआ, जो पिछले साल का तिगुना था। इसी समय किसानों को मालूम हुआ कि सहकारी फार्मों के छोटे होने से बड़े कामों में अड़चन पड़ती है। उनके लिए बड़े साधन और बड़े क्षेत्र होने चाहिए। पाउ नदी की जलनिधि का बांध बनाने के लिए रोज दस हजार आदमी अपेक्षित थे। ये एक गांव से नहीं मिल सकते थे। जब पुरुषों की संख्या काफी नहीं हुई, तो स्त्रियों को बुलाना पड़ा, जिसके लिए उन्हें चूल्हे से छुड़ाना आवश्यक दीख पड़ा। सैकड़ों चूल्हों की जगह सामूहिक चूल्हे बनाने पड़े। इस प्रकार इस इलाके के गांव ताजुकेचुवाङ में जुलाई के प्रथम सप्ताह में कम्यून की स्थापना हुई। इसी समय ४ जुलाई को अध्यक्ष माओ त्से-तुङ यहां आये। सब चीज देखकर उन्होंने प्रशंसा की। १४ अगस्त को सबडिवीजनों (या तहसील) के सारे २४८ सहकारी फार्मों ने अपने को ७ कम्यूनों में संगठित किया। कम्यून ने लोगों के भोजन, वस्त्र और घर का भार अपने ऊपर उठाया। कम्यून के सदस्यों ने नारा बुलन्द किया : "सैनिक ढंग से संगठित होओ, मैदान में लड़ाई की तरह काम करो, सामूहिक जीवन व्यतीत करो।" इसके बाद १६ से ३० वर्ष तक के युवक और १७ से २२ वर्ष तक की युवतियां नागरिक सेना में सम्मिलित हो गये।

कुछ समय बाद गेहूं की फसल काटी गयी। ४० हजार एकड़ में आलू बोने, कारखानों में काम करने के साथ बारिस बिना सूखती फसल की रक्षा के लिए ४० हजार आदमियों की जरूरत पड़ी। तभी कर्मियों को सैनिक ढंग पर संगठित किया गया, जिससे समस्या हल हो गयी।

ताजुकेचुवाङ में १२४ परिवार थे, अर्थात उतने ही चूल्हे और उतनी ही रसोईदारिनें। अब वहां ४ रसोईखाने हैं, जिनका काम २० स्त्रियों से चल जाता है। सारे कम्यून में इस नये प्रबन्ध से ५५ हजार लोगों को दूसरे काम के लिए बचाया जा सका। ३,१८,००० लोगों में से ३,१२,००० सामूहिक रसोईखानों में खाना खाते हैं। रसोईदार कहते हैं : यदि हमारे यहां अच्छा खाना नहीं मिलेगा, तो आदमी अपने घर खाना खायेंगे; हम यह नहीं होने देंगे। शिशुशालाओं, बालोद्यानों और

स्कूलों ने बच्चों को संभाल कर माताओं को मुक्त कर दिया। शीफाङ गांव में ३ से ७ वर्ष के १७३ बच्चे ऐसी शालाओं में शिक्षा पाते हैं। उन्हें चार बार अच्छा भोजन मिलता है। गांव का डाक्टर उनके स्वास्थ्य की देख-भाल करता है। सारे कम्यून में ४८,३२५ बच्चों की पढ़ाई और देख-भाल के लिए १,६१८ स्कूल और ३८६ बालोद्यान-शालाएं हैं। ११७ सुखीभवन ७०–८० या अधिक आयु के निराश्रित बूढ़े-बूढ़ियों की जीवन-संध्या को सुखी बनाने के लिए मौजूद हैं। चीन में सालाना जन-वृद्धि २·३ प्रतिशत है, जब कि हमारे यहां १ प्रतिशत के आस-पास है।

८२ वर्ष के चाङ लाउ-शाउ अपनी सारी जिन्दगी जमींदार के गाड़ीवान रहे। उनका कहना ठीक ही था: "यदि कम्युनिस्ट समाज न होता, तो क्या वह प्रति दिन सफेद आटे और अंडे की कल्पना भी कर सकते थे?" जब उनसे कहा गया कि अभी चीन कम्युनिस्ट समाज की स्थिति में नहीं है, तो भी उनका आग्रह यही बना रहा: "मेरे लिए कम्युनिज्म आ चुका है।"

सांस्कृतिक और मनबहलाव के साधन हर गांव में हैं। क्लब में किसान शतरंज, भिन्न-भिन्न प्रकार के बाजे, पिङपोङ, बैडमिन्टन, बास्केट बॉल खेलते हैं। पुरुषों व स्त्रियों के खेल के दल अलग-अलग संगठित हैं। नाटक मंडली, संगीत मंडली, नृत्य मंडली हैं। एक गांव के पुस्तकालय में हजार से अधिक पुस्तकें हैं। एक बड़ा हॉल व्याख्यान, सिनेमा और नृत्य-गान के लिए है। गांव में सैकड़ों तरह की चीजें डिपार्टमेंट स्टोर में बिकती हैं। लोगों के ज्ञान-विज्ञान को बढ़ाने के लिए अगस्त तक १०१ लाल विशेषज्ञ कालेज स्थापित किये गये हैं, जिनमें ६८८० विद्यार्थी प्रविष्ट हैं। यह कहने की जरूरत नहीं कि ये कालेज वयस्कों के लिए छुट्टी के समय ज्ञान और अनुभव अर्जित करने के लिए हैं। कालेज गांव के साधारण कच्चे मकानों में लगते हैं। महल जैसे मकानों पर रुपया या श्रम बर्बाद करना उन्हें पसन्द नहीं है। कम खर्च बालानशीन उनका व्यावहारिक महामंत्र है। शिक्षा के साधन भी बिल्कुल मामूली हैं। विद्यार्थी अपने हल-बैल, छकड़े, हंसुए-कुदाल को बाहर आंगन में छोड़कर पढ़ने जाते हैं। कई जिलों और प्रदेशों की तरह इस कम्यून से भी निरक्षरता

दूर की जा चुकी है। पुस्तक की पढ़ाई के साथ कृषि और उद्योग की उपज कैसे बढ़ायी जाय, इसकी शिक्षा भी दी जाती है। जब काम की भीड़ कम होती है, उस समय विद्यार्थी पढ़ने में अधिक समय लगाते हैं। अध्यापकों में अनुभवी स्थानीय किसान, स्कूल-अध्यापक और कमकर ही नहीं हैं, बल्कि नगर के वे विद्वान और विशेषज्ञ भी हैं जो पिछले साल लाखों की संख्या में गांवों में चले आये हैं। प्रयोग के लिए उनके पास खेत हैं, लोहा बनाने के भट्ठे हैं। इनके सारे प्रोग्राम देश की निर्माण योजना से सम्बद्ध हैं। चीन में योजना का हरेक अंग सोच कर चलाया जाता है। वहां आग लगने पर कुएं नहीं खोदे जाते। १९५८ में ही स्वीश्वे कम्यून को ३००० ट्रैक्टर ड्राइवर, १२४० पशुपालन विशेषज्ञ और ६००० कृषि जानकार चाहिए थे। इसलिए ये कालेज दिखावे के लिए नहीं हैं। रासायनिक खाद का कारखाना बड़ी तत्परता से खड़ा किया गया है। खेतों को गहरा खोद कर उसमें तह-पर-तह खाद बैठायी जाती है। १९५८ में ही उन्हें २००० जिन प्रति मू (६ टन प्रति एकड़) अन्न पैदा करना था।

अपने कम्यून के भविष्य का नक्शा उन्होंने बना रखा है। सो भी बहुत दूर का नहीं। प्रदर्शनी में एक कम्यून ने शहरों जैसे मकान और सड़कोंवाले घर चित्रित किये हैं, जहां सभी घरों में बिजली, सारी खेती यंत्रीकृत, अनुसंधानशालाएं, नये पुस्तकालय, अनेक प्रकार के कारखाने, कला विद्यालय, नाट्य-शालाएं, आदि होंगे। पुराने घरों का कहीं पता न रहेगा। मैंने पूछा : "यह तो वर्षों बाद होगा।" इस पर संचालक ने कहा : "अगले साल आइये, और इस गांव की जगह शहर देखियेगा।" मानव का शारीरिक और मानसिक श्रम सचमुच जादू जैसा प्रभाव रखता है। आज वह चीन में सारी बाधाओं से मुक्त है। उसे खुल कर काम करने का अवसर मिला है। हरेक स्त्री-पुरुष काम करने की होड़ लगाये हुए है और हर होड़ लगानेवाला अपने साथी को पीछे धकेलना नहीं, बल्कि अपने साथ आगे ले जाना चाहता है।

४. पमौ कम्यून

शङ्है चीन का सबसे बड़ा शहर है, जिसकी आबादी ८० लाख है। पेकिङ राजधानी इससे दूसरे नम्बर पर (६२ लाख आबादी) है। हम २३ से २७ अक्तूबर तक शङ्है देखते रहे। इसी बीच २६ को यहां के कम्यून पमौ को देखने का अवसर मिला। कम्यून का हेडक्वार्टर ४५ किलोमीटर पर था, जिसे हमारी मोटर ने एक घंटे में पार किया। चिनचाउ होटल से निकल कर कितने ही समय तक हम उपनगर से गुजरे। फिर सड़क खेतों के बीच से गुजरती रही। यहां की बस्तियां सड़कों के किनारे नहीं, बल्कि नहरों के किनारे हजारों वर्षों से बसी हैं। महानहर है और छोटी नहरें भी। छोटी भी ऐसी जिनमें नावें चलती हैं। नावों के निकलने के ख्याल से ही पुलों के मेहराबों को ऊंचा बनाया गया है। बड़ी नहरों में तो अच्छे खासे बजड़े चलते हैं, इसलिए उनके पालों और मस्तूलों के आकार-प्रकार का भी ख्याल रखा गया है। जिस वक्त ये नहरें बनी थीं उस वक्त इनका प्रयोग यातायात (नौचालन) और मछली के लिए ही हुआ था, सिंचाई के लिए कम ही, क्योंकि इनका तल आस-पास की भूमि से प्रायः नीचा रहता है, और पुराने साधन जल उठाने के लिए खर्चीले तथा परिश्रम साध्य थे। अब तो बिजली ने उसे आसान कर दिया है। आज इनका उपयोग सिंचाई, यातायात और मछली पालन तीनों के लिए होता है।

चीन की महादीवार की ख्याति सारी दुनिया में है, और वैसा होना ही चाहिए; पर चीन की महानहर की ओर उतना ध्यान नहीं

दिया गया, हालांकि यह भी दुनिया की अद्भुत चीजों में है। महानहर पेकिङ के पास से निकलती है और हङ्चाउ के पास की नदी से मिल कर समुद्र में चली जाती है। इसकी लंबाई ढाई हजार किलोमीटर, या दो हजार मील से कम नहीं है। भारत में यह दूरी कलकत्ता से पेशावर जितनी होगी। महानहर का एक बड़ा भाग छठी सदी में—आज से १४०० साल पहले—बना था। इसके द्वारा ह्वाङ्हो (पीत गंगा) और याङ्चीक्याङ दो महानदों के बीच यातायात सम्बंध स्थापित कर दिया गया। महानहर ने दुर्लंघ्य पहाड़ों को नहीं लांघा, बल्कि वहां वह टेढ़ी-मेढ़ी हो गयी है। पर ह्वाङ्हो, हुई और याङ्ची जैसी बड़ी, सैकड़ों मंझोली तथा छोटी नदियों से वह कैसे बच सकती थी? उसने उन्हें पार किया—एक तट पर वह नदी से मिली, उसके दूसरी ओर सामने नहर की धार खुदी तैयार थी, जो अपने साथ पानी ले चली। इस प्रकार नहर आगे बढ़ती गयी। इस कठिनाई को हम समझ सकते हैं, यदि हम एक ऐसी नहर की कल्पना करें जो सतलज से बिहार के पूर्णिया जिले तक जाती हो और जिसे घग्घर, मरकंडा, सरस्वती, जमुना, गंगा, राम-गंगा, गोमती, घाघरा, गंडक, कमला, कोसी जैसी बड़ी-छोटी सैकड़ों नदियों को पार करना पड़ा हो। महानहर में इस बात का भी ध्यान रखा गया कि रास्ते में कहीं ऊंचा धरातल न आ जाये, नहीं तो धार वहीं रुक जायगी। उस समय समुद्र तल से ऊंचाई नापने के आजकल जैसे यंत्र नहीं थे। जैसे महानदियां अपनी सैकड़ों शाखा नदियां रखती हैं, उसी तरह चीन की यह महानहर हजारों शाखा नहरों वाली है। याङ्ची से दक्षिण, यानी मध्य और दक्षिणी चीन में नहरों का वैसा ही जाल बिछा हुआ है जैसा कि कश्मीर उपत्यका में। इनके बनाने में कितना श्रम लगा होगा, यह सोचना भी मुश्किल है। इन्हें चालू रखने में भी पिछले डेढ़ हजार वर्षों से प्रति वर्ष भारी श्रम लग रहा है, इसमें शक नहीं। पर यह शौकीनी की वस्तु नहीं है। इसका उपयोग इतना है कि महानहर, नहर और नहरियों के किनारे रहने वाले लोग शायद यह सोच भी न पायें कि नहरों के बिना भी आदमी रह सकता है।

टेढ़ी-मेढ़ी नहर-नहरियों के पुलों को पार करते समय मन

ही अन हम चीन में मानव के इस महान प्रयत्न की प्रशंसा कर रहे थे, और यह भी सोच रहे थे कि जिन्होंने केवल हाथ और मामूली हथियारों से यह सब कर दिखाया है, वे आधुनिक साधनों से सम्पन्न होकर क्या नहीं कर दिखायेंगे ? कहीं खेतों में पाल का ऊपरी भाग चलायमान दिखाई पड़ता। पहले तो समझ में नहीं आया कि खेतों में यह कपड़ा कैसे सरकता जा रहा है। नहरों में से कितनी नहरियां निकल कर कुछ दूर पर समाप्त हो जाती हैं, क्योंकि उनका वहीं तक उपयोग है। बाज वक्त उनके नदी होने का भ्रम होता, पर जब हम उनसे सटे घरों को देखते तो वह दूर हो जाता। आखिर बरसात में तो छोटी नदी भी इतरा के चलती है। उनके भीतर मछुओं की नावों को देख कर मिथिला भूमि याद आने लगती थी। यहां बारहो महीने मछली घर के पास थी। मिथिला में भी संस्कृत के हमारे भाग्यवान महापंडित अपनी पोखरी जरूर रखते हैं, जहां से अबेर-सबेर हर समय मछली निकाली जा सकती है। ठीक सड़क पर शायद ही कोई गांव मिला हो।

आखिर में गांव के कुछ घरों के दरवाजे सड़क की ओर दिखाई दिये। उनके देखने से गांव की विशेषता नहीं दिखाई पड़ सकती थी, क्योंकि धनवन्तों ने अपनी हवेलियां नहर के किनारे बनायी थीं। आंगन में दो मोटरें खड़ी थीं, जिनसे मालूम हो गया कि हम अपने गंतव्य स्थान पर पहुंच गये। पहुंचते ही कम्यून संचालक श्री वेन चौशान दो-तीन साथियों के साथ पास आये। हाथ मिलाने के बाद परिचय हुआ। फिर गांव के भीतर आफिस के एक कमरे में बैठा कर कम्यून की जानकारी करायी गयी। कम्यून की लम्बाई साढ़े बारह और चौड़ाई दस किलोमीटर है। इसके १,१६,६६६ एकड़ के क्षेत्रफल में ८४,१७० एकड़ खेत हैं। शेष भूमि नहर-तालाब आदि की है। कम्यून की जनसंख्या २१,५३० (लगभग आधी स्त्रियां) है जिसमें काम करनेवालों की तादाद ६,११३ (लगभग आधी स्त्रियां) है। यही औसत प्रायः सभी कम्यूनों में देखी जाती है। नागरिक सेना में ४००० स्त्री-पुरुष हैं। कमकर और नागरिक सैनिक दोनों का संगठन पलटन के ढंग पर है। सेना में एक रेजिमेंट (अफसर कर्नल), ६ बटालियन (अफसर मेजर), ४२ प्लैटून

(अफसर लेफ्टीनेंट) और ४०८ दल (अफसर सर्जेन्ट) हैं। प्रत्येक दल में १२-१५ आदमी होते हैं। संचालक वेन सेना और कमकर समूह के कर्नल भी हैं। यह कम्यून छंग जिले (श्यान) में है, जिसकी आबादी लगभग ११ की लाख है। अब तक सारा का सारा जिला कम्यूनों में संगठित हो चुका है।

शङ्है के इलाके में उत्तरी भारत से अधिक सर्दी पड़ती है। हमारे यहां सिर्फ मद्रास की तरफ साल में दो बार धान की फसल होती है। यहां की हालत देखने से मालूम होता है कि हमारे यहां भी साल में दो फसल हो सकती है। हां धान के लिए पानी की जरूरत होगी, यानी नहरी इलाके में ही दो फसल पैदा की जा सकती है। दो फसलों को प्रथम धान और द्वितीय धान कहते हैं। १९५८ में पमौ में प्रथम धान १९४८ एकड़ में रोपा गया था, जिसमें तीन एकड़ के प्रायोगिक खेत में ४·८७७ टन प्रति एकड़ धान हुआ। द्वितीय धान ६६६० एकड़ में रोपा गया था, जो अब कटने के लिए तैयार था। पीछे की ओर से देखने पर दूसरी बस्तियों की तरह पमौ गांव भी श्रीहीन सा मालूम होता है। पर महानहर में नाव पर चढ़कर या पुल पर से देखने पर उसकी सुन्दरता और समृद्धि का पता लगता है। बीच-बीच में ३० जमींदारों की दोमंजिला-तिमंजिला हवेलियां हैं। इन्हीं ३० घरों के के पास पमौ इलाके की ८०% जमीन थी। अब वे नामशेष रह गये हैं, क्योंकि वे च्याङ के समर्थक थे। उनमें से कुछ देश छोड़ कर भाग गये, कुछ अपने अपराधों के लिए दंडित हो जेलों में हैं। पूछने पर मालूम हुआ कि सजा भुगत लेने पर चाहें तो वे अपने गांव लौट सकते हैं।

मैंने चार-पांच टन प्रति एकड़ धान पैदा होने की बात बहुत सुनी-पढ़ी थी, पर वैसे खेत को देखा नहीं था। पौने ५ टन एकड़ वाले खेत की बात सुनते ही मैंने उसे देखने की इच्छा प्रकट की। खेत नहर के पार गांव के बाहर था। पार जाने के लिए एक से अधिक पुल थे, नावें भी थीं। हम पुल से पार हुए। लड़कों और सयानों की भी एक बड़ी पल्टन साथ हो गयी। शायद मैं अकेला होता, तो यह न होता। मेरी पत्नी (कमला) की साड़ी और जया-जेता के नन्हें भारतीय चेहरे अधिक

आकर्षण का काम कर रहे थे। नहर के दोनों ओर तट से सटी गृह-पंक्तियां थीं। उनके पीछे बाजार की पतली सड़क थी, जिस पर कार नहीं जा सकती थी। दूकानें अधिकतर एकमंजिला हमारे यहां जैसी थीं। सचमुच उन्हें देख कर मालूम होता था कि हम बिहार के किसी कस्बे में घूम रहे हैं। दस साल पहले यह सारी दूकानें चलती रही होंगी। पहले सभी दूकानदार अलग-अलग थे, उन्हें अपनी जीविका चलाने के लिए दूकानें चलानी पड़ती थीं। थोड़ा बिके या अधिक, दूकान पर एक पुरुष या स्त्री को सबेरे से शाम तक बैठना पड़ता था। अब दुनिया ही उलट गयी है। पहले से माल अधिक बिकता है, पर बेचने का काम दस-पांच दूकानें कर सकती हैं, जिनमें उतने आदमियों को अगोरने की जरूरत नहीं। आज की दूकानें बड़ी हैं, मकानों में नहीं, सौदे में। मकान तो अभी पुराने ही हैं। जब तक खेती, कारखाने आदि के लिए आदमियों की मांग ज्यादा है, तब तक पुराने घरों से ही काम लिया जायगा।

चाहे गांव में खपड़ैल घरों को देखते या गांव के बाहर खेतों को, चाहे साथ चलती बालसेना को देखते या शब्दों या निःशब्दता से आत्मीयता प्रकट करते नर-नारी समूह को, मन यह नहीं मानता था कि हम भारत से बाहर हैं। गांव से बाहर पास ही धान के खेत थे। हमारी ही तरह पानी रोकने के लिए ऊंची मेड़ें थीं। यदि खेतों में पानी भरा होता, तो उन पर चलने में डर लगता। अपने दर्शनीय धान खेत पर पहुंचने से पहले हमें इंट के कुछ घर बनते दिखाई पड़े। संचालक ने बतलाया—ये हमारे कार्यालय बन रहे हैं। २० आदमी इंट तैयार करने में लगे थे, जिनकी तादाद आसानी से १०० की जा सकती थी। कोयला ढोकर लाने भर की देर थी। फिर यदि पमी कम्यून कुछ ही वर्षों में अपने सौधों के नगर का सपना देखे, तो आश्चर्य क्या? कम्यून हर बात में मितव्ययिता का ख्याल रखता था। यह इसीसे मालूम हो रहा था कि मकान बनाने में पुराने मकानों की इंटें भी लगायी जा रही थीं। पमी में आधे के करीब मकान इंट की दीवारों वाले थे। संभव है, यहां खपड़ैलों का भी इस्तेमाल हो। चीनी खपड़ैलें हमारे यहां से अधिक मजबूत होती हैं। उनकी शक्ल-सूरत कुछ-कुछ मद्रासी खपड़ैलों जैसी है। कई

कटे कियारों की मेड़ों पर से होते हुए हम दर्शनीय खेत पर पहुंचे। वह चमत्कारिक खेत तो था ही। हमारे यहां जापानी ढंग से धान की खेती करने का बहुत प्रचार किया जा रहा है, जिसमें धान की हरेक पांत तथा हर दो पौद के बीच एक फुट या अधिक अन्तर रखना आवश्यक समझा जाता है। यहां दो पांतियों के बीच सिर्फ ६ अंगुल (४ इंच) और दो पौदों के बीच ३ अंगुल (२ इंच) का अन्तर था। चीन की खेती सम्बंधी अष्ट-सूत्री है : १. सिंचाई, २. खाद, ३. गहरी जुताई, ४. अच्छा बीज और खेत को बेहतर बनाना, ५. नजदीक-नजदीक बुवाई-रोपाई, ६. पौधे की हिफाजत और कीड़ों से बचाना, ७. खेती के औजारों में सुधार, ८. खेती का सुप्रबन्ध। नजदीक की बुवाई-रोपाई जापानी तरीके से बिल्कुल उल्टी है। मैंने सुना था कि यहां धानों की पांत पर आदमी खड़ा हो सकता है। उसके फोटो भी देखे। तब भी विश्वास करना मुश्किल था। यहां वह खेत हमारे सामने था। पांतियों के बीच ६ अंगुल और पौदों के बीच ३ अंगुल का अन्तर भी पौदों में से निकले दूसरे पौदों के कारण लुप्त-सा हो गया था। धान की बालें बहुत लंबी और बड़ी-बड़ी थीं। वे दानों के भार से लटक गयी थीं। धान की पांत पर लड़के खड़े हो सकते थे। पमौ के किसान अपनी सफलता को दिखलाने में बड़ी प्रसन्नता का अनुभव कर रहे थे।

शङ्है का यह इलाका अप्रैल १९४८ में कुओमिन्तांग के हाथ से निकल कर कम्युनिस्टों के हाथ में आया था। बड़े-बड़े जमींदार और पूंजीपति कम्युनिस्टों के विरोधी एवं च्याङ काई-शेक के समर्थक थे। इसलिए कम्युनिस्टों को आता देखकर उनमें से बहुत से भाग गये। १९५० में कम्युनिस्ट सरकार ने भूमि-सुधार चालू किया और जमीन का बंटवारा अदामी के हिसाब से कर दिया। दो साल बाद उन्होंने किसानों को बतलाया कि खेत अलग रखो, पर काम मिल कर करो। इस प्रकार पहले मेहनत में सहयोग कायम हुआ। खेत मिलने पर किसानों में अधिक अनाज उपजाने का भाव बड़े जोरों से पैदा हुआ। १९५० तक चीन अनाज में आत्म-निर्भर हो गया। श्रम-सहयोग से उपज और बढ़ी। लाभ को देख कर किसानों का उत्साह बढ़ा और १९५३ में उन्होंने सहकारी

खेती शुरू कर दी। सहकारी फार्म १६५८ के आधे समय तक काम करते रहे। किसानों ने सुभीता देख कई गांवों को मिला कर सहकारी फार्म कायम किये। १५ सितम्बर १६५८ में पमौ ने ३०० गांवों का अपना कम्यून स्थापित किया। जिस दिन मैं वहां पहुंचा था, उस दिन कम्यून स्थापित हुए छः ही हफ्ते हुए थे। इसमें शक नहीं कि जिस फसल का आंकड़ा उन्होंने दिया था, उसका अधिकांश सहकारी फार्म के जमाने में ही काटा गया था। ६ ही हफ्ते के भीतर इतना साफ हिसाब होने का कारण यही था कि लोगों को अनेक गांवों के सम्मिलित सहकारी फार्म का तजुर्बा था।

कम्यून का अर्थ है कृषि और उद्योग-धन्धे का साथ-साथ विकास करना। पमौ में जीविका के साधन हैं: खेती, मछली पालना, सूअर पालना, लोहा-फौलाद बनाना, भेड़ें रखना। इस साल अपनी नहरों और तालाबों में पमौ ने ६ लाख मछली के बच्चे डाले। सितम्बर महीने में एक सौ टन मछली पकड़ी गयी जिसमें आधी शङ्है भेज दी गयी और आधी कम्यून के रसोईघरों में गयी। सामूहिक होने से अब छोटी मछलियों को लोग नहीं पकड़ते। अगर वह जाल में फंस जाती है, तो उन्हें फिर पानी में छोड़ दिया जाता है। कम्यून के पास ३०० शूकर-शालाएं हैं, जिनमें १२,००० सूअर पाले गये हैं। सूअर की वृद्धि बहुत तेजी से होती है। सूअरों को बढ़ाने की ओर लोगों का बहुत ध्यान है। कम्यून में ८००० भेड़े हैं जिनकी और भी वृद्धि की जा रही है। खरगोश, बत्तक और मुर्गी पालने का काम अभी भी वैयक्तिक है। लेकिन यह स्थिति बहुत दिनों तक नहीं रहेगी।

कम्यून के प्रशासन के लिए बालिग मताधिकार द्वारा निर्वाचित सदस्यों का सम्मेलन है, जिसकी बैठक साल में दो बार होती है। इसके ८५ सदस्यों में ३० प्रतिशत स्त्रियां हैं। सदा काम करने के लिए २० सदस्यों की परिषद् है जिसमें ४ स्त्रियां हैं। परिषद का एक संचालक और दो उप-संचालक हैं। कार्यालय के अतिरिक्त ८ विभागों की ८ समितियां हैं। उदाहरण के लिए: कृषि, उद्योग, वित्त, शिक्षा, स्वास्थ्य, शासन, पुलिस, नागरिक सेना आदि।

नागरिक सेना में चार हजार व्यक्ति हैं। नागरिक सेना तथा साधारण काम करनेवाले किसान नर-नारी भी सैनिक ढंग से संगठित हैं: एक रेजीमेन्ट (अफसर कर्नल), ६ बटालियन (अफसर मेजर), ४२ कम्पनी (अफसर कप्तान), १३६ प्लैटून (अफसर लेफ्टीनेन्ट) और ४०८ दल (अफसर सर्जन्ट)। प्रत्येक दल में १२ से १५ व्यक्ति होते हैं। नागरिक सेना में भर्ती होना ऐच्छिक है और ३२-३४ वर्ष से ऊपर के व्यक्ति इसमें नहीं लिये जाते। नागरिक सैनिकों को नियम पूर्वक फौजी कवायद व परेड करनी पड़ती है और उन्हें हथियारों का इस्तेमाल करना सिखलाया जाता है।

कम्यून के ३०० गांवों के लिए सिर्फ १७७ भोजन-शालाएं हैं। मैंने पूछा—तब तो गांव के नर-नारी (बच्चों-बूढ़ों) को दूसरे गांव भोजन करने जाना पड़ता होगा। उन्होंने बताया कि गांव नजदीक-नजदीक हैं। जहां पहले हरेक घर में एक स्त्री को भोजन बनाने में व्यस्त रहना पड़ता था, वहां अब एक भोजनशाला के लिए तीन से पांच तक रसोइये (प्रायः स्त्रियां) पर्याप्त होते हैं। इस प्रकार हजारों स्त्रियां चूल्हे से मुक्त हो उत्पादन के काम में लगी हुई हैं। कम्यून में निम्न वस्तुएं मुफ्त में दी जाती हैं: भोजन, दोनों मौसमों के वस्त्र, मकान, शिक्षा, चिकित्सा सप्ताह में एक बार सिनेमा, हजामत, कपड़ा धुलाई, आदि। धोबी खाना हर एक रसोईखाने के साथ है। विवाह के वक्त २० युवान (४० रु०) और मृत्यु के समय ५० युवान (१०० रु०) खर्च के लिए कम्यून की ओर से दिया जाता है। विवाह से श्राद्ध में ज्यादा पैसा खर्च होता है, क्योंकि चीनी लोग अपने मुर्दों को बहुत सजा कर दफनाते हैं। प्रसूति सेवा भी निशुल्क दी जाती है।

प्रति वर्ष साल में एक मास की सवेतन छुट्टी मिलती है। यह बात उद्योग-धन्धों में काम करने वालों के बारे में है। किसान फसल बोने और काटने के समय काम में लगे रहते हैं। उन्हें कृषि से फुर्सत होने पर छुट्टी मिलती है। प्रति दिन ८-९ घंटे काम करना होता है।

कम्यून में सांस्कृतिक कामों के लिए क्लब और मंडलियां संगठित हैं। उसकी अपनी नाटक मंडली और नृत्य-वाद्य मंडली है। इनके

अलावा वॉली बाल, चीनी शतरंज आदि कितनी ही तरह के खेल भी कम्यूनियों के लिए संगठित हैं।

अभी पमौ के गांवों के घर प्रायः पुराने ही हैं और अधिकांश मिट्टी की दीवारों और खपरैलों वाले हैं। यहां वर्षा ज्यादा होती है, अतः मिट्टी की छतें काम नहीं दे सकतीं। संचालक ने बतलाया कि हम ३०० गांवों को हटा कर उनकी जगह चार महाग्राम बसानेवाले हैं। मैंने सोचा कि २१-२२ हजार की आबादी वाले इस इलाके को चार गांवों में बसाना बहुत वर्षों का काम होगा। पर संचालक ने बतलाया कि यह हमारा १९५९ का प्रोग्राम है। १९५९ की योजना में निम्न बातें हैं : खेतों की यन्त्र से सिंचाई, उत्पादन को २४ टन प्रति एकड़ तक ले जाना, आफिस के लिए विशाल तिमंजिला इमारत और उसकी महाशाला को पूरा करना, गांवों में बिजली की रोशनी लाना, खेतों के लिए आधे दर्जन ट्रैक्टर और ढुलाई के लिए चार लारियां मंगाना।

१७ वृद्धों और ६ वृद्धाओं के लिए बने "सुखी सदन" को भी हमने देखा। उनमें से कोई-कोई चावल साफ करने, साग-सब्जी काटने में मदद करते हैं। ऐसे "सुखी सदन" वृद्धों के लिए और भी हैं। गांव का शौचालय पुराने ढंग का था, लेकिन बहुत साफ। चीनी लोग पाखाने को कीमती खाद समझते हैं, इसलिए उसे बेकार जाने देना नहीं चाहते। महाग्रामों के बसने पर फ्लस वाले पाखाने बन जायेंगे। लेकिन तब भी पाखाने को बेकार नहीं जाने दिया जायगा। कम्यून में कई स्नानगार हैं। चीनी लोग चाहे रोज स्नान न करते हों, लेकिन जब करते हैं, तो काफी समय लगाते हैं : गर्म पानी में नहाना, फिर शरीर को गर्म रखते हुए बहुत देर तक स्नानागार में रहना।

हम लोगों के भोजन का इन्तजाम जिले के हेडक्वार्टर युनशान में किया गया था, जो यहां से १८ किलोमीटर दूर था। खेतों के बीच छोटी-बड़ी नहरों के पचासों पुलों को पार कर हम वहां पहुंचे। नहरों के अलावा यहां का एक आकर्षण विशाल प्राकृतिक सरोवर और पीछे की तरफ का पहाड़ था। सरोवर का मछली पालने के लिए सहस्राब्दियों से उपयोग होता आया है, लेकिन पहाड़ के लोहे को पहले कोई नहीं

पूछता था। युनशान ७० हजार का नगर है। अभी इसका विकास पूरे तौर से नहीं हुआ है। सड़कें पक्की कर दी गयी हैं, पर टेढ़ी-मेढ़ी हैं। उनके किनारे दूकानें उसी तरह हैं जैसी कम्युनिस्ट शासन के पहले रही होंगी। हां उनकी संख्या कम हो गयी है। कहने की आवश्यकता नहीं कि वहां कोई वैयक्तिक दूकान नहीं है। दूकानों में सौदों को भरा देख कर ख्याल होता था कि हमारे यहां से कुछ चीजें, विशेष कर शौकीनी की, बहुत मंहगी हैं। पर उनके खरीदार तो होंगे ही, तभी तो दूकानें भरी पड़ी हैं। जिला मैजिस्ट्रेट तो वहां हो नहीं सकते थे। उनका काम सम्मेलन और परिषद के हाथ में है। संचालक (डायरेक्टर) को जिला मैजिस्ट्रेट कह सकते हैं। उन्हीं की देखरेख में एक खासे भोज का प्रबन्ध हो गया था। चीनी लोग अपने मेहमानों को पचासों तरह का भोजन कराने के लिए प्रसिद्ध हैं। पहले के जमाने में भोजन का आठवां हिस्सा भी कोई नहीं खा सकता था। अब उतनी फजूलखर्ची तो नहीं है, पर भोज में १०-१५ तरह की चीजें होना मामूली बात है। आमिष में मछली, मुर्गी, कछुवे का मांस था। न जाने किसके मुंह से केंकड़े का नाम निकल आया और दो ही मिनट में जिन्दा केंकड़ा हमारे सामने पहुंच गया। केंकड़े को वहां जिन्दा ही बेचा जाता है। उसमें हड्डी ज्यादा और मांस कम होता है। जरा देर में वह बन कर आ भी गया। लेकिन न तो मेरी पत्नी ने उसे खाना पसन्द किया और न दोनों बच्चों ने। न चखने का पीछे मुझे अफसोस रहा, तजुरबे से वंचित हो गया। भोजन में चावल और कई तरह की सब्जियां थीं। मेजबान इस बात की बराबर कोशिश करते रहे कि हम चीनी भोजन का स्वाद लें। चीनी भोजन स्वादिष्ट होता है, चाहे उसमें मिर्च-मसाले का अभाव भले ही हो। राई-सरसों की पत्तियां भी रसेदार रखी जाती हैं, जो भारतीय स्वाद के अनुकूल नहीं।

भोजन के बाद हमें लौह यज्ञ देखने जाना था। पमी कम्यून के भीतर कोई पहाड़ नहीं है, न लोहे का पत्थर। उसके नजदीक यही युनशान पहाड़ है। इसमें अपार लौह घन भरा पड़ा है। चीन में इस साल जब लौह यज्ञ का नारा लगा, तो नगर से कुछ दूरी पर स्थित इस पहाड़ पर

जंगल में मंगल होने लगा। युनशान पर जंगल नहीं है। कभी रहा होगा, जिसे लोगों ने लापरवाही से उच्छिन्न कर डाला। अब पेड़ लगाये जा रहे हैं, लेकिन उन्हें जंगल के रूप में परिणत होने में समय लगेगा। पहाड़ की जड़ में एक समय तीस हजार आदमी जमा हो गये थे। पमौ कम्यून के १४१५ भट्ठे वहां स्थापित हो गये। माओ ने कहा : लोहा बनाने में पुराने-नये सभी ढंग इस्तेमाल करने चाहिए। पहले लोगों ने हलवाइयों के चूल्हों जैसे हजारों भट्ठे खड़े कर दिये, लेकिन अब एक-डेढ़ मन घान वाले भट्ठे ही काम कर रहे थे। लोहा बनानेवाले लोगों की संख्या भी अब १२,००० रह गयी है। उनके लिए फूस की झोपड़ियां बन गयी थीं। सामूहिक रसोईखानों में तीन वक्त भोजन तैयार मिलता था। सभी ओर उल्लास दिखाई पड़ता था। संचालक ने अपने भट्ठे दिखाये जिनके लिए काफी नीचे-ऊपर चढ़ना पड़ा। मालूम हुआ कि उनके लौह यज्ञ से प्रति दिन ११३ टन लोहा बनता है। बड़ा कारखाना खोलने पर करोड़ों की मशीनें आवश्यक होतीं। जिस तरह गांधी जी ने लाखों की लागतवाले कारखानों के बिना चर्खा और खद्दर के जरिए कपड़े में स्वावलम्बी होने का पाठ हमें पढ़ाया, वही काम ये लौह यज्ञ कर रहे थे। जिस प्रकार छोटे भट्ठों को तीन या चार महीने में सूना हो जाना पड़ा, उसी प्रकार हो सकता है कि कुछ वर्षों बाद ये भट्ठे भी सूने हो जायें। लेकिन ऐसा तभी होगा जब कोई बड़ा लौह-फौलाद कारखाना यहां स्थापित हो जायगा। इन भट्ठों में हवा देने के लिए बिजली के पंखे लग गये थे, लेकिन एक समय भाथी के सहारे आक्सीजन पहुंचायी जाती थी।

लौह यज्ञ देखने के बाद हमें बताया गया कि यहां के चिड़ियाखाने में बालोंवाले कछुवे हैं। संस्कृत में कूर्म-रोम असम्भव समझा जाता है, पर यहां छोटे-छोटे कई कछुवे थे जिनकी पीठ पर हरे-हरे लोमों की पंक्तियां थीं। शाम होने आयी और हमें ६३ किलोमीटर चलकर शङ्है पहुंचना था।

५. फुङ छाउ कम्यून

शङहै से हाङचाउ जाने में रेल से ५ घंटे लगते हैं। यह चीन का बहुत ही महत्वपूर्ण नगर है। सौन्दर्य में यह अद्वितीय माना जाता है। पास का विशाल सरोवर इसकी शोभा है, जिसके चारों तरफ के हरे-भरे पहाड़ उसे और सुन्दर बना देते हैं। हर चीनी अपनी इस नगरी पर अभिमान करता है। इस नगर के सुई के कामवाले चित्र बहुत बिकते हैं। ऐतिहासिक और सांस्कृतिक दृष्टि से भी हाङचाउ बड़ा महत्व रखता है। ८वीं शताब्दी से कितने ही समय तक यह चीन के बड़े भाग की राजधानी था। फिर ११वीं से १३वीं सदी तक यह सारे स्वतंत्र चीन की एकमात्र राजधानी रहा। १३ वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में जब कुबले खान ने इस पर अधिकार किया था, तब यह शायद संसार का सबसे बड़ा नगर था। प्राचीन बौद्ध बिहारों और स्तूपों के लिए भी यह प्रसिद्ध है। पांचवीं-छठी शताब्दी में स्थापित लिनयिनस्सू बिहार का इतना महत्व समझा गया कि कुछ ही वर्ष पहले चीन की कम्युनिस्ट सरकार ने इसकी मरम्मत पर १४ लाख रुपये खर्च किये हैं।

हाङचाउ में हमें कई दिन रहना पड़ा। इस समय को हमने दर्शनीय स्थानों को देखने में लगाया। ३१ अक्तूबर को इस प्रदेश के एक कम्यून को देखने का अवसर मिला, जिसका नाम फुङ छाउ है। हाङचाउ से १०० किलोमीटर से अधिक दूर होने के कारण हमने सवेरे ८ बजे ही मोटर से प्रस्थान किया। पर्वत के एक घिरावे को रेलवे लाइन के साथ-साथ पार कर नदी पार पहुंचे। यह नदी कुछ ही दूर जाकर समुद्र

में मिल जाती है। पेकिङ से आनेवाली २००० हजार मील लम्बी महा-नहर अन्त में इसी नदी में मिलकर सागर संगम करती है। पुल पार करने पर हमें एक अच्छा खासा नगर मिला। चीन में हर जगह, विशेष कर रेलवे स्टेशनों के पास नये कल-कारखाने स्थापित हुए हैं, जिसके कारण ऐसे नगरों की संख्या बहुत बढ़ गयी है। कुछ ही दूर जाने पर नहरों का जाल बिछा मिला। हमारी सड़क किसी बड़ी नहर के साथ जा रही थी। इन नहरों का महत्व इसीसे मालूम होगा कि सभी बड़े गांव या कस्बे नहरों के किनारे बसे हुए हैं। उनके ऊपर पक्के घाट भी मिलते हैं। कितनी ही जगह लोगों ने अपने किसी पूर्वज के स्मारक रूप में पत्थर के दरवाजे-तोरण खड़े कर दिये हैं। नहरें यातायात का सबसे सस्ता साधन थीं। इनमें माल से लदी नावें हर वक्त चला करती थीं। मछली के रूप में नहरें आहार भी देती थीं। पहले सिंचाई के लिए शायद इनका उतना उपयोग नहीं था, लेकिन आज तो मशीनें पानी को ऊपर उठा कर खेतों में पहुंचा देती हैं। यह सारा इलाका धान का है। साल में दो फसलें हुआ करती हैं। अब द्वितीय धान की फसल भी कट चुकी थी, इसलिए खेतों की जुताई हो रही थी। रास्ते में जहां एक जगह से दो नहरें निकाली गयी थीं, वहां एक विशाल गांव मिला। श्री चाङ ने बतलाया कि आधुनिक चीन के सबसे बड़े लेखक लू शुन (१८८१-१९३६) का जन्म यहीं हुआ था। कम्युनिस्ट शासन स्थापित होने के पहले ही उनका देहान्त हो गया था।

आज अक्तूबर का अन्तिम दिन था। वर्षा सितम्बर के अन्त के साथ खत्म हो चुकी थी। सर्दी नहीं आयी थी, इसलिए वनस्पति झुलसे नहीं थे।। सारी भूमि देखने में बड़ी सुन्दर मालूम होती थी। रास्ते में कितने ही गांव मिले जो कम्यून में संगठित हो चुके थे। चीन में सनातन काल से मुर्दों को दफनाया जाता है। पुराने जमाने में ऐश्वर्य के अनुसार विशाल समाधियां बनायी जाती थीं। मुर्दे के साथ उनके व्यवहार की बहुत सी मूल्यवान चीजें दफना दी जाती थीं। खाने के लिए कुछ जान-वरों को भी मार कर डाल दिया जाता था। इस प्रकार एक-एक सम्राट की कब्र में लाखों की सम्पत्ति गाड़ दी जाती थी। पहले तो एक राजवंश

को उच्छेद करनेवाला दूसरा राजवंश ही इन कब्रों को ध्वस्त करने के लिए तैयार रहता था। फिर चोर भी ताक लगाये रहते थे। इसीलिए कब्रों को इस तरह बनाया जाता था ताकि किसी को पता न लगे। पर मिङ और मंचू वंश के अलावा किसी वंश के सम्राट की कब्र सुरक्षित नहीं रही। सम्राटों के बाद सामंत और दूसरे धनी लोग भी अपने लिए भव्य कब्रें बनवाते थे। कई लोग तो अपने जीते जी कब्रों को तैयार कर डालते थे। बिना अपवाद के सारे चीनी अपने मुर्दों को गाड़ते थे। गरीबों की कब्रें मामूली मिट्टी की होती थीं। जिस देश में ढाई-तीन हजार वर्ष से मुर्दे इस तरह गाड़े जाते हों, वहां कब्रों ने कितनी जगह घेर ली होगी, यह आसानी से समझा जा सकता है। गरीबों की कब्रें कुछ दूर हट कर परती या पहाड़ी जमीन में बनती थी, पर धनी लोग अपने खेतों में ही अपनी कब्रें बनवाते थे। सड़क के दोनों ओर ये कब्रें बड़ी संख्या में देखने में आ रही थीं। चीन से धनियों का राज्य चला गया। यदि उनके वंशज हैं भी, तो जनगण के सामने कुछ बोलने की हिम्मत नहीं रखते। और अब तो "सभी भूमि गोपाल" की है। जनता सबकी मालिक है। छोटे खेतों की मेड़ों को तोड़ कर बड़े खेत बना दिये गये हैं। धान के खेतों में पानी के तल को ठीक रखने के लिए अवश्य मेड़ें हैं। खेतों को छेंकनेवाली बहुत सी कब्रें हटा दी गयी हैं। तो भी उनकी संख्या अभी हजारों है। अधिक धनी लोग पत्थर की कब्रें बनवाते थे, जिन पर नाम बड़े-बड़े अक्षरों में लिखा जाता था। २० वीं शताब्दी में सीमेन्ट की कब्रें बनने लगीं। एक पहाड़ की जड़ में तीन मेहराबों वाली कब्र का एक दरवाजा खुला था। पूछने पर बताया गया कि इस पुरुष की दो बीबियां थीं। एक बीबी और मियां मर चुके हैं, जिनको इनमें दफनाया जा चुका है। दूसरी बीबी जब मरेगी तो तीसरे मेहराब में दफनायी जायेगी। कम्यून के नेता दफनाने की हानि को समझते हैं, पर लोगों के भावों का खयाल कर कब्र प्रथा के विरुद्ध प्रचार नहीं करते। इसका उदाहरण हमारे पथ-प्रदर्शक श्री चाङ की मां थीं। वह मध्य चीन से बीमार होकर अपने पुत्र के पास पेकिङ गयीं। बाद में उन्हें खयाल आया कि बेटा कम्युनिस्ट है और पेकिङ में मुर्दा जलाने की दो भट्ठियां

काम कर रही हैं। मरने पर कहीं उनको भी वहीं जला न दिया जाय, इसलिए जरा सा अच्छा होते ही बुढ़िया अपने बेटी के पास चली गयी। कम्यून के नेताओं ने जब अपनी कठिनाई बतायी, तो मैंने कहा कि पहले नेता लोग ही अपने लिए यह लिख जायें कि मरने पर उन्हें जलाया जाय। कब्र प्रथा के उठने में कुछ वर्ष लगेंगे, पर उसके लिए खेतों को छेंक रखने का अधिकार अब नहीं रह गया है। कब्रें भी अब पत्थर और सिमेंट की उतनी नहीं बनायी जातीं। इसमें शक नहीं कि हजार-दो हजार वर्ष पुरानी कब्रों में से बहुत सी पुरानी ऐतिहासिक सामग्री प्राप्त होगी, लेकिन उनको पहचानना आसान नहीं होगा।

पहाड़ कुछ पहले से ही दिखाई देने लगे, लेकिन हमारी मोटर पहाड़ के भीतर उस जगह घुसी जहां से फुङ छाउ १०–१५ किलोमीटर से अधिक नहीं था। पहाड़ जंगलों से साफ हो गये थे, लेकिन पिछले सात-आठ वर्षों से जंगल लगाने का जबर्दस्त प्रयत्न हो रहा है। इसका फल एक पीढ़ी बाद देखने में आयेगा। पहाड़ों के भीतर घुसते ही सीढ़ीनुमा खेत सामने आ गये। प्रायः निचले सारे खेत धान के थे। ऊपर के खेतों में मकई या गेहूं भी बोया जाता है।

फुङ छाउ कम्यून चची जिले में है। यह महागांव नहर के किनारे बसा हुआ है। पहाड़ी भूमि में भी नहर बनाने का प्रयास चीनी लोगों की नहर-प्रियता को बतलाता है। गांव के पास उपत्यका चौड़ी हो गयी है। कम्यून की सीमा शायद वह घाटी थी जो दोनों ओर की धाराओं की जलविभाजक थी। टेलीफोन से पहले ही पता लग गया था, इसलिए ११ बजे के करीब जब हम महाग्राम पहुंचे, तो कम्यून के संचालक श्री स चन सू अपने सहायकों के साथ स्वागत के लिए तैयार थे। सू २४ वर्ष के युवक और १ लाख जनता के सम्मानित और निर्वाचित नेता थे। उनके सहायक भी जवान थे। उदाहरणार्थ : उद्योग के अधिकारी (मंत्री) ३१ वर्ष, खेती के अधिकारी चाङ २७ वर्ष, वित्त-अधिकारी पान ३२ वर्ष, शिक्षा-मंत्री चाऊ ३२ वर्ष, कानून-मंत्री फान २९ वर्ष, श्रम-कल्याण मंत्री श्रीमती लो छम २४ वर्ष की उम्र के थे। वाणिज्य-मंत्री ही सबसे अधिक उम्र के यानी ३६ वर्ष के थे। कम्यून जैसे युग-प्रवर्तक काम के

नेता चीन में यही तरुण हैं। संचालक सू बड़े ही सरल स्वभाव के थे। उनकी पोशाक देखकर मालूम होता था मानो गांव के मामूली किसान हैं। उनकी योग्यता और बुद्धि का प्रमाण तो यही था कि कम्यून ने उनको अपना सबसे बड़ा नेता चुना था। गांव चार गलियों के किनारे बसा हुआ था। गलियों में अब मोटरें और लारियां भी आती-जाती थीं। पर यदि सामने से दूसरी मोटर आ जाय, तो एक को काफी दूर तक पीछे हटना पड़ता था। फुङ छाऊ में २५ लखपति जमींदार थे। इनके महल अभी भी उपयोग के लिए मौजूद थे, लेकिन कम्यून ने अपना आफिस एक साधारण से मकान में रखा है, जो नहर के बिलकुल किनारे है। नहर में पानी चलता रहता है। पर वह पीने योग्य नहीं था। शायद तजुर्बे ने चीनी लोगों को बता दिया है कि बिना उबाले पानी नहीं पीना चाहिए। आफिस का मकान यद्यपि कच्चा खपरैल का था, पर बहुत साफ था। उसके पाखाने में एक मक्खी का भी पता नहीं था। श्री सू ने अपने कम्यून का परिचय दिया : फुङ छाऊ कम्यून ३७१ वर्ग किलोमीटर में फैला हुआ है। इसकी ७० प्रतिशत भूमि पहाड़ी है। जनसंख्या ६६,५४० है जिसमें ३६,१०० (१८,७६३ स्त्रियां) काम करनेवाले हैं। चीन में प्रायः ४० प्रतिशत लोग काम करने की आयु के होते हैं, बाकी ६० प्रतिशत बच्चे और बूढ़े होते हैं। कम्यून के पास १५,०३० एकड़ धान के खेत हैं। गेहूं ४००३ एकड़ में बोया जाता है। इसके बाद सबसे अधिक भूमि (३५०० एकड़) पर चाय बागान हैं।

उत्पादन के बारे में संचालक ने बताया : १९५७ में हमारे यहां प्रति एकड़ १·८ टन धान हुआ था। १९५८ में प्रथम धान की फसल ३·७२ टन प्रति एकड़ रही; और द्वितीय धान की फसल ३ टन प्रति एकड़ हुई। चाय की पैदावार १९५७ में १३६ टन थी, जो १९५८ में २७० टन हो गयी। चीन ने सबसे पहले चाय का आविष्कार किया और उसी से दूसरे देशों ने चाय पीना सीखा। आज भारत में चाय सर्वव्यापक हो गयी है। एक शताब्दी पहले उसका कहीं पता भी न था। सम्भवतः कश्मीर के लोग मध्य एशिया से लाकर उसे व्यवहार में लाते थे। हेडक्वार्टर से चाय बागान पहुंचने में हमें एक घंटे के करीब

लगा होगा। रास्ते में कई गांव मिले। सभी घर मिट्टी-खपरैल के थे। ध्वंसावशेषों को देखने से ऐसा मालूम होता था कि ये हजारों वर्ष पुराने हैं। फैक्टरी चाय के बगीचे के पास थी। पहले ये बगीचे जमींदारों के थे, जो यंत्रों का प्रयोग बहुत कम करते थे। १९५६ में ये सहकारी फार्म के रूप में परिणत हुए। उसके बाद यन्त्रशाला स्थापित की गयी, जिसमें बिजली से चलने वाली कितनी ही मशीनें हैं। कितनी ही चीजें जो भारत की चाय फैक्टरियों में लोहे-पीतल की मिलेंगी, वे यहां बांस-काठ की थीं। अप्रैल-जून की पत्तियां सबसे उत्तम समझी जाती हैं। चाय का उत्पादन पहले १५६० तिन, फिर ३००० और अब १२,००० तिन प्रति वर्ष है। भारतीय मेहमान को चाय की फैक्टरी में चाय पिलाये बिना कैसे छोड़ा जा सकता था। तुरन्त चाय बन कर आ गयी। यह चीन के लोगों का पेय नहीं था। इसे बाहर उन देशों में भेजा जाता है जहां चीनी और दूध का इस्तेमाल किया जाता है। चीनी लोग तो सिर्फ चाय का अर्क पीते हैं। हम लोग यह अर्क पीने के अभ्यस्त हो गये थे। हमें उसमें स्वाद आने लगा था। लेकिन पीले रंग की जगह इस लाल चाय के अर्क को हम गला दबा कर ही कंठ के नीचे उतार सकते थे। यह इलाका ऐसा है जहां सर्द मुल्क के फल पैदा होते हैं। चाय के साथ अनार, भुनी चेस्टनट, चीनी-पिस्ता और कुछ दूसरे फल भी थे। चीनिया बादाम को मूंगफली के नाम से हम जानते हैं, लेकिन चीनिया पिस्ता के बारे में हमें कुछ मालूम नहीं है। यह पिस्ता से कुछ बड़ा होता है। स्वाद पिस्ता जैसा न होने पर भी अच्छा होता है। यह तेल से भरा रहता है। इसे भून कर खाया जाता है। पहले ऊपर के कड़े छिलके को हटाने पर नीचे काले रंग की पतली खोल मिलती है, जिसे ऊपरी छिलके की सहायता से हटाया जा सकता है।

इस पहाड़ी इलाके में कौन से खनिज हैं, इसका पता दो वर्ष पहले नहीं के बराबर था। अब मालूम हुआ है कि यहां लोहा, तांबा, रांगा, कोयला, सीमेन्ट (चूना पत्थर) जैसी कितनी ही चीजें भरी पड़ी हैं। अब इनमें से अनेक खनिजों पर काम भी होने लग गया है। सितम्बर १९५८ में यहां ७७६ टन लोहा बनाया गया था और पहली नवम्बर

से २०० टन प्रति दिन बनने वाला था। लोहा बनाने के छोटे चूल्हे अब काम में नहीं लाये जाते। उनका जमाना एक-डेढ़ महीने तक ही रहा। अब तो बिजली के पंखोंवाले तीन बड़े भट्ठों से यहां काम होने लगा है। जिस श्रद्धा और उत्साह के साथ चीन के लोग लौह यज्ञ में भाग ले रहे थे, उसे देख कर ईर्ष्या होती थी।

प्रशासन। सभी कम्यूनों की तरह यहां के प्रशासन के लिए भी सम्मेलन और परिषद हैं। सम्मेलन के ९३ और परिषद के २१ सदस्य अलग-अलग विभागों का संचालन करते हैं। इनमें से कुछ विभागों के नाम हम बतला आये हैं। ३९,१०० कर्मियों में से ८००० नागरिक सेना में हैं। ये सैनिक १ रेजीमेन्ट, ८० बटालियन, १३७ कम्पनी, ५२३ प्लैट्रन और १७३२ दलों में संगठित हैं। सारी मिलिशिया के प्रधान सेनापति संचालक सू हैं। इनके सैनिकों को बाकायदा सैनिक शिक्षा लेनी पड़ती है। सारे ३९,००० कम कर भी सैनिक ढंग पर संगठित हैं।

जया (५ वर्ष) और जेता (साढ़े तीन वर्ष) को कम्यूनों की और बातों में क्या दिलचस्पी हो सकती थी। पर उन्हें इस बात की खुशी होती थी कि हर जगह बड़ी अच्छी मौसियां मिल जाती थीं। चाहे मौसी उनका एक शब्द भी न समझती हों, लेकिन उनको खुश करने में सफल हो जाती थीं। चीनी मौसियों का उन पर इतना प्रभाव पड़ा था कि जब रंगून से भारतीय हवाई जहाज पर हम चढ़े, तो वहां की मौसी (ऐयर होस्टेज) के बर्ताव को देख कर जेता ने कहा: "अम्मा, यहां चीन जैसी मौसियां क्यों नहीं हैं?"

इस कम्यून के पास ३,२०० भैंस-भैंसें थे। चीन में भैंस या गाय के दूध को पिया नहीं जाता। इसलिए भैंसें हल जोतने के काम आती हैं। उनका दूध उनके बच्चे ही पीते हैं। उत्तरी चीन में घोड़े-खच्चर-गदहे भी हल में जोते जाते हैं, पर यहां उनका पता नहीं था। कम्यून के पास यातायात के लिए ३९० नावें हैं। पहाड़ी इलाका होने से नहरों को कठिनाई के साथ ही निकाला जा सकता है, नहीं तो उनकी संख्या और अधिक होती। अभी खेती में आधुनिक मशीनों का प्रयोग नहीं के बराबर होता है। हां, मिस्तरियों ने हलों और खेती के दूसरे औजारों में

सुधार किये हैं। कुछ ही वर्षों बाद यहां ट्रैक्टर और दूसरी मशीनें भी आ जायेंगी, क्योंकि आधे दर्जन से अधिक विशाल ट्रैक्टर कारखाने अब उनका उत्पादन करने लगे हैं।

शिक्षा। छोटे बच्चों के लिए २५८ शिशु-शालाएं हैं जिनमें २१०० शिशु पढ़ते हैं। १२४ बालोद्यानों में ३७०१ बालक हैं। ६ वर्ष की पढ़ाई वाले प्राइमरी स्कूलों की संख्या १४८ है जिनमें १४२६ विद्यार्थी हैं। हाई स्कूल तीन हैं। कृषि के ५ हाई स्कूलों में २१७२ लड़के पढ़ते हैं। कृषि स्कूल के विद्यार्थियों को आधा समय पढ़ने और आधा समय खेतों पर काम करने में लगाना पड़ता है। पढ़ने योग्य अवस्था वाला कोई भी लड़का अब स्कूल के बाहर नहीं है। निरक्षरता सिर्फ वृद्धों में रह गयी है। इससे समझा जा सकता है कि चीन ने कितनी तेजी से शिक्षा में उन्नति की है। चीनी लिपि में प्रत्येक शब्द के लिए अलग अक्षर होता है। इसलिए साधारण पढ़नेवाले के लिए भी कम से कम २००० अक्षर का ज्ञान आवश्यक है। इस कठिनाई के रहते हुए भी शिक्षा की इतनी उन्नति श्लाघनीय है। सितम्बर १९५८ से पहली कक्षा में रोमन अक्षरों का व्यवहार होने लगा है। दस-पन्द्रह वर्षों बाद चीनी लिपि की दुरूहता से लोगों को मुक्ति मिल जायगी। कम्यून में ४८ पुस्तकालय और मनोरंजन के लिए ११८ क्लब हैं। हर हफ्ते चलते-फिरते फिल्म लोगों को दिखाये जाते हैं। नृत्य-संगीत-वाद्य मंडलियां कम्यून में रहने वालों का सदा मनोरंजन करती रहती हैं।

चिकित्सा के लिए कम्यून में एक बड़ा अस्पताल और अनेक डिस्पेन्सरियां हैं। इनमें ४५ रोगियों के रहने का भी प्रबन्ध है। डाक्टरों की संख्या २८ है जिनमें देशी-विदेशी दोनों चिकित्सा प्रणालियों के जानकार हैं। ३३ नर्सें और २०० से ऊपर दाइयां हैं। वृद्धों के लिए ३७ वृद्ध-भवन हैं, जिनमें ३७० वृद्ध-वृद्धाएं रहते हैं। वहां उनकी हर तरह से सेवा और परिवरिश की जाती है। ३७२ ग्रामों में से प्रत्येक गांव में अब प्रायः एक ही भोजनशाला है। फलस्वरूप कई हजार स्त्रियां कम्यून के दूसरे कामों के लिए मुक्त हो गयी हैं। उनमें से कितनी ही पुरुषों की तरह खेतों में काम करती हैं, कितनी ही अध्यापिकाएं हैं।

कम्यून के ३२ दर्जीखानों में भी वे काम करती हैं। यह कहने की आवश्यकता नहीं कि अपने एक लाख बाशिन्दों को कम्यून मुफ्त भोजन-वस्त्र-घर-चिकित्सा-शिक्षा आदि प्रदान करता है ।

सिंचाई। जहां वर्षा काफी होती है, वहां पहाड़ों में सिंचाई का बहुत आसानी से प्रबन्ध किया जा सकता है। पहाड़ जिस जगह एक-दूसरे के नजदीक आते हैं, वहां बांध बना देने से भारी जलनिधि बन जाती है। इस कम्यून में दो दर्जन से ऊपर जलनिधियां बनायी गयी हैं। पास से गुजरते समय लोगों ने हमें एक जलनिधि को दिखाना चाहा। पानी के अधिक ऊपर उठने पर वह दो तरफ से बह सकता था। एक तरफ बांध बन चुका था और दूसरी तरफ बंध रहा था। संचालक ने पहले अपने इंजीनियरों से हमारा परिचय कराया। इंजीनियर कुछ शिक्षित मेधावी किसान थे। उन्होंने स्वयं इस जलनिधि का नक्शा बनाया था और उन्हीं के आदेश के अनुसार काम हो रहा था। उन्होंने हमें अपना नक्शा दिखलाया। उन्होंने यह भी बताया कि जल की राशि को और बढ़ाने के लिए ८-१० किलोमीटर दूर से हमें नहर लाना पड़ेगा, जिसमें काम भी लग गया है। दूसरी ओर के बांध को हम देखने गये। "हिकमते चीन" की कहावत उस समय हमें याद हो आयी। यहां एक सीधा-सादा किसान अपनी इन्जीनियरिंग का चमत्कार दिखा रहा था। दो फर्लांग दूर से पत्थर की मिट्टी काट कर बांध पर डालने में भी चीनी बुद्धि का चमत्कार दिखाई पड़ा। लकड़ी की दो रेलें समानान्तर रखी हुई थीं। ५-६ गाड़ियां ट्रेन की तरह जोड़ दी गयी थीं, जिनमें से हर एक पर बीस-पच्चीस मिट्टी से भरी टोकरियां रखी जा सकती थीं। टोकरियों में रस्सी का हैंडल था। मिट्टी को ऊपर से नीचे लाना था। सारी रेल को एक भैंसा दौड़ कर खींच लाता और एक मिनट में सारी टोकरियां उंडेल दी जातीं। फिर भैंसा खाली रेल को ऊपर ले जाता। वहां २००० मजदूर काम कर रहे थे। बस्ती से दूर जहां काम होता, वहां चलता-फिरता रसोईखाना पहुंच जाता था और काम करने वालों को समय पर अच्छा भोजन तैयार मिलता था ।

कम्यून के आफिस के पास ही एक प्राइमरी स्कूल था। हम उसे

देखने गये। वह बहुत ही विशाल और सुन्दर इमारत थी। पर इसे स्कूल के लिए नहीं बनाया गया था। पहले यह गांव के धनिक परिवार का पितर मन्दिर था। गांव में ऐसे १० पितर मन्दिर हैं। जहां २५ लखपति जमींदार हों, वहां ऐसे १० विशाल भवनों का होना आश्चर्य की बात नहीं। मुर्दे को सम्मान के साथ कब्र में दफनाना और पितरों की पूजा करना चीन की सामन्ती संस्कृति का प्रधान अंग था। इस मन्दिर में अपने गोत्र के सभी व्यक्ति साल में एक बार पूजा करने आते, चाहे वे पचीसों पीढ़ियों में अपने मूल गांव से दूर ही क्यों न चले गये हों। ये मन्दिर बतला रहे थे कि इनके वंशजों की स्थिति बहुत समृद्ध रही होगी। जमींदारों के भव्य महलों का भी सदुपयोग हो रहा है। उनमें से किसी को अस्पताल के रूप में, तो किसी को स्कूल के रूप में परिणत कर दिया गया है। नये योरोपीय ढंग की एक सुन्दर दुमंजिला इमारत को "सुखी सदन" बना दिया गया है। उसके कीमती पलंग, बिस्तरे और फर्नीचर देख कर ऐसा मालूम होता था कि पहले यह किसी अमीर का विलास भवन था। अब उसमें ४७ से ८१ वर्ष के ६ वृद्ध और ६ वृद्धाएं निवास करते हैं। उनमें कुछ नेत्रहीन भी थे। उनके आराम के लिए हर तरह का प्रबन्ध था। उन्होंने भारतीय अतिथि का बड़ी प्रसन्नता के साथ स्वागत किया और बतलाया कि कैसे हमने सारा जीवन जमींदारों की चाकरी में बिताया था। आज यदि उनका राज्य होता, तो हमें नरक का जीवन बिताना पड़ता।

फुङ छाऊ एक कस्बा है। कुछ समय बाद जब ३७२ गांवों को घटा कर उनकी संख्या डेढ़ दर्जन कर दी जायगी, तो यह और बढ़ जायगा। यहां के पहाड़ों में छिपी खनिज सम्पत्ति को ऊपर लाने के लिए खानें और कारखानें स्थापित होंगे। दो-चार वर्ष में ही यह कस्बा एक बड़े नगर का रूप धारण कर लेगा।

संचालक और उनके साथी हमें अपने लौह यज्ञ को दिखलाने ले गये जो गांव के छोर पर नहर के किनारे हो रहा था। भट्ठा काफी बड़ा था, जिसमें एक बार डेढ़-दो टन लोहा बनता था। जिस समय हम वहां पहुंचे, उस समय पिघले लोहे की धार भट्ठे से बाहर निकल

रही थी। एक थान घंटे भर में तैयार हो जाता है। लोहे को बेचने की कम्यून को कोई चिन्ता नहीं थी। उसमें से कुछ को फौलाद बनाकर हथियारों और यन्त्रों के बनाने के लिए मिस्तरीखाने में भेज दिया जाता है। विशाल मिस्तरीखाना सड़क के किनारे हमें रास्ते में मिला। उसके बनाने में लकड़ी और बांस का ही अधिक प्रयोग किया गया था। लौह यज्ञ से लौटते समय एक मकान पर क्रास लगा हुआ दिखाई दिया, अर्थात यहां ईसाई पादरी आये थे। हो सकता है कि उनके बनाये लोगों में कुछ अब भी ईसाई हों, नौजवान नहीं तो बूढ़े ही सही। गिरजा धूमिल सा मालूम होता था। ऐसा जान पड़ता था कि उसमें जानेवाले भक्तों की संख्या काफी नहीं है।

न जाने क्यों एक लाख की आबादी वाले फुङ छाऊ कम्यून ने हमें सबसे अधिक आकर्षित किया। हो सकता है कि उसकी हरी-भरी पर्वतस्थली हिमालय की याद दिलाकर हमें अपनी ओर खींचती हो। मधुर व्यवहार तो दूसरे कम्यूनों में भी कम नहीं था। चलते वक्त संचालक ने चीनी पिस्तों की लेबिल लगी दो छोटी पेटियां प्रदान की। जया और जेता उसके स्वाद को जान चुके थे। उन्हें बड़ी प्रसन्नता हुई। ५ बजे के करीब हम कम्यून से विदा हुए और रात को हङ्चाउ लौट आये।

६. शानसन कम्यून

तिब्बत और सिङक्याङ के बाद भारत के सबसे नजदीक का भाग युन्नान है। आसाम के आगे बर्मा और फिर युन्नान आता है। क्षेत्रफल में यह बहुत बड़ा है, पर इसकी आबादी कम ही है। सारा प्रदेश पहाड़ी है, जिसकी पश्चिमोत्तर सीमा पर सनातन हिम से आच्छादित चोटियां हैं। इसे हिमालय का ही पूरब में बढ़ा हुआ भाग समझा जा सकता है। युन्नान की राजधानी कुनमिङ है, जिसकी आबादी ८ लाख है। कम्युनिस्ट शासन के बाद नगर की जनसंख्या बहुत बढ़ी, क्योंकि यहां कई कारखाने खुल गये। कुनमिङ का सम्बंध रेल द्वारा दूसरे शहरों से नहीं है। उसकी उन्नति में यह भारी बाधा है। अब चुङकिङ से रेल की सड़क यहां लायी जा रही है। रास्ते में पड़नेवाले कम्यूनों ने अपने क्षेत्र में सड़क बनाने का भार अपने ऊपर ले लिया है। १९५९–६० तक कई सौ मील लम्बी और अनेक पहाड़ी सुरंगों से गुजरने वाली रेल तैयार हो जायेगी। पूंजीपति देशों के लिए पहाड़ों के भीतर से रेल निकालना सबसे कठिन काम है, क्योंकि इसके लिए प्रति मील करोड़ों रुपया खर्च करना पड़ता है। यदि बड़े पहाड़ों में दस सुरंगें भी निकालनी पड़ें, तो बड़ी-बड़ी कम्पनियां तक घबराने लगती हैं। लेकिन कम्युनिस्ट चीन के लिए पहाड़ों में रेल बनाना उतना दुष्कर कार्य नहीं है, क्योंकि उसका हिसाब युवान (रुपये) में नहीं, बल्कि आदमी के शारीरिक और मानसिक श्रम एवं उपयुक्त सामग्री में किया जाता है। और ये सब घर की ही चीजें हैं। कई विशाल पर्वत श्रेणियों को पार कर ह्वाङहो महानदी

के पानी को नहर द्वारा सैकड़ों मील ले जाने की हिम्मत चीन जैसा देश ही कर सकता है।

यद्यपि कुनमिङ रेल मार्ग पर नहीं है, पर वह हवाई यातायात का बड़ा जंक्शन है। हर भारतीय को चीन जाते समय बर्मा से उड़ने के बाद रात में यहीं विश्राम करना पड़ता है। क्वानतन महानगर से भी यहां विमान आते हैं और चुङकिङ से भी। ६ नवम्बर १९५८ को हम क्वानतन से साढ़े सात बजे सबेरे उड़कर साढ़े ग्यारह बजे कुनमिङ पहुंचे थे। रास्ते में तीन लाख की आबादी वाले नननिङ नगर में एक घंटा विश्राम करना पड़ा। विमान के अतिरिक्त मोटर से भी कुनमिङ का सम्बंध पार्श्ववर्ती इलाकों के साथ है। द्वितीय महायुद्ध के समय भारी खर्च करके बर्मा से कुनमिङ तक मोटर-सड़क बनायी गयी है। इस सबके बावजूद रेल की सहायता बिना यहां भारी औद्योगिक कारखाने कायम नहीं किये जा सकते, क्योंकि ट्रकों पर चार-पांच टन से अधिक भारी मशीनें नहीं ढोयी जा सकती हैं। कुनमिङ सर्द इलाका है। वहां हर साल बर्फ पड़ती है। ऊंचाई १८०० मीटर अर्थात ५००० फुट से ऊपर है। कुनमिङ में हमें ८ तारीख तक रहना पड़ा और ९ को ही हम वहां से बर्मा एवं भारत के लिए उड़ सके। हम ७ को ही प्रस्थान करने वाले थे। पर मौसम खराब था, इसलिए विमान को दो दिन रुकना पड़ा। हमने इस समय का पूरा उपयोग करना चाहा। ७ को मौसम खराब था, इसलिए कम्यून की यात्रा १० बजे आरम्भ करनी पड़ी। पहाड़ों से घिरा यह प्रदेश बीच में एक बड़े मैदान जैसा है जिसकी जमीन ऊभड़-खाबड़ हैं। जिस सड़क पर हम चल रहे थे, वह हाल ही में बनी थी। बीच-बीच में कई नयी बनी नहरों को भी हमें पार करना पड़ा। एक दिन पहले हम कुनमिङ प्रादेशिक प्रदर्शनी देखने गये। यह प्रदेश अभी उद्योग प्रधान नहीं हुआ है, इसलिए कारखानों की चीजें अधिक नहीं थीं। पर दस्तकारी का कक्ष बहुत विशाल था। युन्नान चीन का वह इलाका है, जहां बीसियों अ-हान (चीनी-भिन्न) जातियां बसती हैं। सबके अपने-अपने स्वायत्त इलाके हैं, जहां उनकी अपनी भाषा राज्य-भाषा है और शासक उनके अपने प्रतिनिधि हैं। प्रदर्शनी में इन लोगों की उपज का भी प्रदर्शन किया गया

था। एक-एक इलाके की चीजें अलग-अलग रखी गयी थीं। कुछ कमरों को देख लेने के बाद प्रदर्शनी के संचालक को हमारे बारे में मालूम हुआ। वह खुद दिखाने आये और मुझसे सुझाव पूछा। प्रदर्शनी की दीवारों पर यद्यपि फोटो लगे हुए थे, लेकिन किस अल्पसंख्यक जाति की यह उपज है, इसे चीनी अक्षर जाननेवाले ही समझ सकते थे। मैंने उनसे कहा कि हर कमरे के दरवाजे पर उस जाति के स्त्री-पुरुषों की अपनी जातीय पोशाक में तसवीर रहनी चाहिए। नक्शे तो भीतर मौजूद थे ही। प्रदर्शनी देखने में काफी समय लगा। फिर संचालक के चाय पीने के निमन्त्रण को स्वीकार करना पड़ा। ऐसे तो चीनी चाय को स्वागत का कोई महत्वपूर्ण साधन नहीं माना जा सकता, पर चाय के साथ इस प्रदेश के कई तरह के फल भी वहां मौजूद थे। अनार, कन्धारी अनार जैसे बड़े थे। नासपातियां हमारे यहां की साधारण नासपातियों की तरह थीं, पर वजन में वे आध-आध सेर भारी रही होंगी। उनकी शक्ल देखकर अपने यहां की नासपातियों की याद हो आती थी और उनकी तरफ हाथ बढ़ाने की रुचि नहीं होती थी। पर जब एक टुकड़ा मुंह में डाला, तो मालूम हुआ कि इनके सामने कश्मीर की नाखें भी फीकी हैं। उस समय तो हमने समझा कि ये युन्नान प्रदेश के किसी दूर के इलाके से आयी होंगी। पर ७ तारीख को जब हम कम्यून देखने गये, तो मालूम हुआ कि यहां ये नासपातियां बहुत होती हैं। संचालक यह कह रहे थे कि "हमारे लिए ये नासपातियां बड़ी समस्या बन गयी हैं। अगर मोटरों पर बाहर भेजें तो चार-पांच दिन लगते हैं। उसके कारण एक तो किराया अधिक पड़ जाता है और दूसरे रास्ते में कितनी ही नासपातियां खराब हो जाती हैं।" पेड़ों पर हलके-पीले रंग के फल लदे हुए थे। कम्यून के लोग जितना चाहें उतना खायें। उनका एकमात्र बाजार कुनमिङ था। आखिर वहां वे कितनी बिक पातीं? चलते वक्त संचालक ने हमारी मोटर पर एक दर्जन नासपातियां रखवा दी। जेता को नासपातियों से अधिक अनार पसन्द आये थे। अनार कार में नहीं आये, इसलिए वह उसके लिए रोने लगा। जिस कम्यून में हम जा रहे थे, वहां अनारों की अधिकता नहीं थी, यद्यपि उन्हें सफलतापूर्वक लगाया जा सकता था।

हमारे पथ-प्रदर्शक जिस कम्यून को दिखाना चाहते थे, कार पहले वहां ही गयी। लेकिन जाने पर संचालक नहीं मिले, इसलिए कार को लौटाकर चिनिङ जिले के हेडक्वार्टर में जाना पड़ा। उससे थोड़ी दूरी पर एक विशाल सरोवर है और नगर से लगा हुआ एक छोटा सा हरा-भरा पहाड़ भी है जो नगर की शोभा बढ़ाता है। नगर की आबादी अभी करीब ८ हजार ही है। लेकिन संभावना यह है कि शीघ्र ही बढ़ जायेगी, क्योंकि अब चिनिङ में छोटे-मोटे कारखाने खुलने लगे हैं। रेल भर आने की देर है। सारे जिले की आबादी २,०१,३६५ हैं। वह ६ कम्यूनों में बंटा है, जिन्हें तीस-तीस हजार की ६ तहसीलें समझिए। कम्यून की स्थापना १६ सितम्बर १९५८ को हुई थी, यानी हमारे जाने से डेढ़ ही मास पहले। उसके पहले सहयोगी फार्म थे, जिनकी संख्या सैकड़ों थी। निजी मिलकियत का प्रश्न न रहने पर किसी सड़क को बढ़ाना या चौड़ा करना, अथवा खेल के मैदान को बनाना, बिलकुल आसान है। जिले के हेडक्वार्टर के सामने सैकड़ों घरों को गिराकर चौड़ा मैदान बना दिया गया था। अभी भी उनकी ईंटों की ढुलाई लगी हुई थी। हेडक्वार्टर की इमारतें काफी ऊंची, प्रायः सभी दो-मंजिला, स्वच्छ और सुन्दर थीं। जिला संचालक श्री ली लिन को शायद हमारे आने का पता न था, क्योंकि हम कोई और कम्यून देखने वाले थे। श्री ली लिन की आयु ४१ वर्ष की थी। मेरे देखे संचालकों में वही सबसे अधिक उम्र के थे। शायद दूसरे जिला संचालक भी इस उम्र के हों, पर मैंने तो कम्यूनों में नौजवानों का ही राज्य देखा। कुछ ही वर्षों पहले श्री ली एक अपढ़ किसान थे। खेत भी शायद उनके पास नाममात्र को ही रहा हो। अब वह सुशिक्षित थे। यह उनकी योग्यता और सेवाओं का ही प्रताप था कि अपने गांव तथा कम्यून से लाकर उन्हें जिले का संचालक (जिला मैजिस्ट्रेट) बना दिया गया। इतने ऊंचे पद पर पहुंच कर भी वह साधारण किसान जैसे ही मालूम होते थे। चीन में गांवों और शहरों के लोगों की पोशाक बहुत कुछ एक जैसी ही दीख पड़ती है। शहरों और गांवों की स्त्रियों में भेद करना कठिन है। दोनों ही नीले रंग के बंद गले के कोट और पैन्ट पहनती हैं। कपड़े मजबूत पर भड़कीले नहीं

होते । कहा जा सकता है कि स्त्रियों में शायद अपने को सुन्दर बनाने की आकांक्षा ही नहीं है । स्वस्थ तो सभी हैं । किसी का हाथ मक्खन जैसा नहीं है, सभी फावड़े और बेलचे भांजनेवाली हैं । मजूरिनें ही नहीं, यूनीवर्सिटी की छात्राओं और प्रोफेसरों का भी यही हाल है ।

चीन अपने कला-प्रेम के लिए हमेशा से दुनिया में प्रसिद्ध रहा है । आज वह प्रेम पहले से घटा नहीं, बल्कि बढ़ ही गया है । संचालक के कार्यालय की फुलवाड़ी देखने से यह मालूम हो रहा था । दूसरी मंजिल पर एक बड़े कमरे में बहुत सी गद्दीदार कुर्सियां और सोफे पड़े हुए थे । वहां ले जाकर श्री ली ने चाय के साथ बात शुरू की । कुन-मिङ से चिनिङ नगर ४७ किलोमीटर दूर है । जिले में कुछ चीनी-भिन्न जातियां भी हैं । ९ ही वर्ष पहले तक यह जिला और उसके गांव चीन में सबसे गरीब समझे जाते थे । इसे नैपाल और गढ़वाल के दरिद्रतम इलाके समझना चाहिए । लोगों की जीविका केवल खेती थी । पत्थरों को हटा कर मुश्किल से सीढ़ी-नुमा खेत बनाये जाते थे । खेती रामभरोसे थी । नहरों का कोई इन्तजाम नहीं था । ६७,२७८ एकड़ खेत थे, जिनमें ३९,४१५ एकड़ सिर्फ धान के थे । पर उपज बहुत कम तथा वर्षा हो जाने पर ही होती थी । लोग गरीब क्यों न होते ? इस भूमि में अपार खनिज सम्पदा थी, जैसी कि हमारे गढ़वाल-कुमाऊं में । लोहा, तांबा, रांगा तथा दूसरी धातुओं के अपार भंडार यहां थे । पर वे किसी काम नहीं आते थे, क्योंकि उनके लिए कारखाने चाहिए । अब लोहा और दूसरी धातुओं का उत्पादन कुटीर उद्योग के तौर पर होने लगा है । बड़े कारखानों के स्थापित होने में भी देर तभी तक है, जब तक कि यहां रेल नहीं पहुंचती । लोग बड़ी उत्सुकता से रेल आने की प्रतीक्षा कर रहे हैं और अपने कम्यून के भीतर सड़कें बनाने में लगे हैं ।

जिला ६ कम्यूनों में बंटा है । पर जल्दी ही यहां छओं कम्यूनों का एक संयुक्त कम्यून बनने जा रहा है । सारी योजना तैयार है । संचालक के आत्म-विश्वास को देख कर ईर्ष्या होती थी । न जाने कैसे एक भारतीय सज्जन ने चीन के कम्यूनों और उनके आदमियों को मोहर्रमी सूरतवाला बतलाया था । मुझे तो एक भी आदमी वैसा नहीं मिला ।

जिले की शिक्षा के बारे में उन्होंने कहा : हमारे जिले में २५२ शिशुशालाएं और बालोद्यान हैं, जिनमें ७ वर्ष से नीचे के १५,२६५ बच्चे रहते हैं। २६४ प्राइमरी स्कूलों में २१,६८७ छात्र हैं। साधारण हाई स्कूल तीन हैं, जिनमें १२०० छात्र हैं। कृषि विद्यालय में २५२ और टैक्निकल विद्यालयों में ८८७ लड़के पढ़ते हैं। प्रौढ़ों को शिक्षित करने के लिए ४०० पाठशालाएं हैं, जिनमें २०,००० लोग शिक्षा पा रहे हैं। निरक्षरता अब अधिक उम्र के बूढ़ों में ही रह गयी है। सांस्कृतिक और दूसरे कामों के लिए जिले में ६० क्लब हैं। ली बड़े इतमीनान के साथ मुस्कराते हुए मेरे प्रश्नों का उत्तर दे रहे थे।

उद्योग के बारे में उन्होंने यह बताया कि हमारे जिले में ३२ कारखाने हैं। अक्तूबर में यहां ६७० टन फौलाद और ३,७८५ टन लोहा पैदा किया गया। धान १९५७ में ७३०,००० टन पैदा हुआ था। १९५८ में वह दुगना हो गया। धान प्रति-मुख ४२० किलोग्राम से बढ़ कर ६५० किलोग्राम हो गया। कम्यून में कौन सी चीजें मुफ्त दी जाती हैं, इसकी सूची इस प्रकार है : भोजन, घर, शिक्षा, चिकित्सा, हजामत, सिनेमा। इसके अतिरिक्त प्रति व्यक्ति महीने में ३ से १० युवान जेब-खर्च भी दिया जाता है। मेरे देखे अन्य कम्यूनों में जाड़े-गर्मी के कपड़े भी मुफ्त मिलते हैं। यहां कम्यून अभी उस स्थिति में नहीं पहुंचा है, इसलिए लोग अपने जेब-खर्च से ही कपड़े बनवाते हैं। कम्यून को स्थापित हुए अभी डेढ़ ही महीने हुए हैं। मैं समझता हूं कि १९५९ में यदि कोई यात्री चिनिङ जिले में पहुंचेगा, तो वस्त्र भी मुफ्त मिलता पायेगा और सभी के कपड़े साफ और नये से देखेगा।

कुछ देर की बातचीत के बाद रसोई के मुखिया ने खबर दी कि भोजन तैयार है। उसके लिए हमें नीचे के कमरे में जाना पड़ा। यहां मैं रोटी का आग्रह नहीं कर सकता था। चीनी लोग भात के प्रेमी हैं। पास के महासरोवर में असंख्य मछलियां पली हुई हैं। भात-माछ के के अलावा मांस, अंडे, सब्जियां भी थीं। मुझे यहां की तली हुई मछली बहुत पसन्द आयी। वह ६ अंगुल से ज्यादा बड़ी न होगी, लेकिन उसमें कांटे का डर नहीं था। शायद मेजबान ने अपनी नासपातियों को संकोच

से ही परोसा होगा, पर हमारे लिए वह अमृत फल के समान थीं। हम उनमें से कुछ को रंगून तक ले आये।

शानूसन् नानूछी

हमारे दुभाषिया-मित्र श्री चेङ चीनी भाषा में ही पथ-प्रदर्शन कर सकते थे। कुनमिङ से आये पथ प्रदर्शक को शानसन की जानकारी नहीं थी, इसलिए जिला संचालक ने एक तरुणी पथ-प्रदर्शिका को हमारे साथ कर दिया, जो उस गांव की तो नहीं थी पर सारे जिले को रौंदे हुए थी। श्री ली से विदा ले हम पहाड़ों के टेढ़े-मेढ़े रास्तों को नापने लगे। एक डांडा (जल विभाजक) भी लांघना पड़ा, पर उसके लिए विशेष ऊंचाई पर जाना नहीं पड़ा। कम्यून के हेड-क्वार्टर वाले गांव तक पहुंचने में एक घंटा से कम ही लगा होगा। पिछले ६ वर्षों में इस इलाके के लोगों की आर्थिक अवस्था में बहुत प्रगति हुई है। पहाड़ों में बांध बना कर जल-निधियां तैयार की गयी हैं। सड़कों का निर्माण हुआ है। ये सड़कें पक्की नहीं थीं, पर पहाड़ी होने के कारण उन्हें कच्ची नहीं कहा जा सकता था। कम्यून का हेडक्वार्टर वाला गांव सड़क के नीचे था। सड़क के ऊपरी तरफ बहुत दूर तक लौह यज्ञ के कुंड चले गये थे। यहां लोहा सतयुगी प्रक्रिया से पैदा किया जा रहा था। रात को हमने बिजली को जलते देखा। पर अभी वह रोशनी भर के लिए ही थी, बड़े लौह भट्ठों में अक्सीजन देने की क्षमता उसमें नहीं थी। थोड़ी देर में एक ट्रक आया जिस पर सतयुग के सुधरे काठ के पंखे लदे थे। यह भी किसी चीनी दिमाग का आविष्कार था। इसे पैरों से चलाने पर छोटे भट्ठों के लिए काफी हवा मिल जाती थी। पतली सड़क पर ट्रक ने आकर एक समस्या पैदा कर दी, क्योंकि बहुत दूर तक उसकी बगल से कार का जाना संभव नहीं था।

हम सड़क से उतर कर गांव के एक दुमंजिला बड़े घर में गये, जो देखने में कच्चा सा मालूम होता था। यहीं कम्यून का आफिस था। गांव १२०० आदमियों का था। कम्यून में कुल ५३ गांव थे, जिनमें ६३०० परिवार, या २३,६७८ लोग रहते थे। आबादी में एक हजार

लोग यी जाति के थे। पहाड़ के मस्तक पर उनका काङहै गांव है जिसकी आबादी ५०० है। यी लोग बहुत पिछड़े हुए थे। पर अब बड़ी तेजी से आगे बढ़ रहे हैं। कुनमिङ में सांस्कृतिक विभाग के मुखिया एक यी तरुण थे। यी लोगों की भाषा चीनी से बिल्कुल भिन्न है। एक बड़े इलाके में उन्हीं के सारे गांव हैं। लियानशान् पर्वत उनके ही इलाके में पड़ता है। इनकी संख्या ३३ लाख है, जो तिब्बती लोगों (२८ लाख) से भी अधिक है। तिब्बती लोग इन्हें लालो (म्लेच्छ) कहकर पुकारते थे। ये उनसे भी ज्यादा पिछड़े हुए थे, इसमें सन्देह नहीं। इनकी भाषा की न कोई लिपि थी, न साहित्य। अब दोनों हो गये हैं। सारे कम्यून की प्रायः २४,००० की आबादी में ११,६६१ कमकर हैं, जिनमें स्त्रियों की संख्या ६० प्रतिशत है। ८००० स्त्री-पुरुष नागरिक सेना में भी हैं। चीन में सौन्दर्य का मान कुछ दूसरा है, जिसे बाहरी लोग नहीं समझते। पर इस इलाके में हमें रंग की सफाई और सुन्दरता अधिक मालूम हुई। लोगों के कपड़े यद्यपि उतने साफ नहीं थे और कुछ के तो पैवंद वाले थे, पर उसके भीतर उनका पुष्ट और स्वस्थ शरीर साफ दिखलाई पड़ रहा था। कम्यून संचालक ने चाय पीते समय जो सूचना दी, वह इस प्रकार है: कम्यून में ५३ भोजनशालाएं हैं, अर्थात प्रति गांव एक। ३० दर्जी-घर हैं। कृषि-उपयोगी भूमि १०,००४ एकड़ है, जिनमें प्रायः सभी धान के खेत हैं। गेहूं थोड़ा ही पैदा होता है। उपज के बारे में बताया गया कि १९५७ में धान की फसल प्रति एकड़ १.६४४ टन थी, जो १९५८ में ३.०२४ टन हो गयी। गेहूं की उपज प्रति एकड़ २०४ किलोग्राम से ३४२ किलोग्राम हो गयी। इसी प्रकार तम्बाकू की उपज २१० से बढ़कर ३९० किलोग्राम हो गयी।

आय (युवान) के बारे में जो आंकड़ा दिया गया, वह इस प्रकार है:

सन	सारा कम्यून	प्रति व्यक्ति	प्रति परिवार
१९५७	१९.८५ लाख	८४.५ युवान	३२० युवान
१९५८	६५.३१ लाख	२७६ युवान	१,१०० "

एक साल के भीतर तिगुनी से अधिक आय बताती है कि प्रगति कितनी तेज है। चीन का यह सबसे गरीब और पिछड़ा इलाका जल्द ही अति समृद्ध बनने जा रहा है।

चिकित्सा के लिए ५ अस्पताल व ५ क्लीनिक हैं, जिनमें ३५ डाक्टर और कितनी ही नर्सें काम करती हैं। हरेक क्लीनिक में रोगियों के लिए तीन चारपाइयां हैं। अस्पताल के लिए इमारत बन रही है।

शिक्षा के लिए कम्यून में ५३ शिशुशालाएं और बालोद्यान हैं। प्राइमरी स्कूल ५३ हैं, यानी प्रत्येक गांव में एक। साधारण हाई स्कूल एक और कृषि हाई स्कूल तीन हैं।

आफिस से हम गांव के भीतर घुसे। अभी तक चीन के गांवों में जितनी सफाई हमने देखी थी, उतनी यहां नहीं थी। तो भी मक्खियां नहीं थीं। चीन के नितान्त गरीब इलाके के लिए ऐसा होना स्वाभाविक था। गांव के मकान सभी पुराने ढंग के थे। उनमें थोड़ा ही परिवर्तन किया गया था। अब तो परिवर्तन इसलिए भी रोक देना पड़ा कि तीन साल के भीतर ५३ गांव की जगह २४ नये ढंग के गांव बसाये जानेवाले हैं। घूमते-घामते हम शिशुशाला में पहुंचे। तीन से पांच वर्ष के ५० से अधिक बच्चे वहां थे। वे अपने प्यालों में भात और सब्जी लिए दो लकड़ियों के सहारे उसे मुंह में डाल रहे थे। हमारे पहुंचते ही एक स्वर से आवाज आयी : "चाचा, आओ भोजन करो।" उनके कपड़े न उतने स्वच्छ थे न पैवन्द के बिना। लेकिन उनका लाल-लाल चेहरा उनके स्वास्थ को बता रहा था। मुझे उस वक्त गढ़वाल और कुमाऊं के गांवों के बच्चों का खयाल आता था जिन्हें कभी पेट भर भोजन नसीब नहीं होता और कपड़े की जगह चीथड़े ही जिनके बदन पर देखे जाते हैं। यहां चार वक्त इच्छापूर्ण भोजन इनके लिए मौजूद था। उनको या उनके पिता-माता को भोजन की चिन्ता कभी न करनी पड़ेगी।

कम्यून में पशु-पालन भी होता है। यहां ७००० सूअर थे।

यद्यपि सूर्य डूबने वाला था, लेकिन हमारे मेजबान एक दूसरा गांव छोड़-कुङ दिखलाना चाहते थे। वहां १०० परिवारों के लिए एक ही साल पहले नये घर बने थे। उनके कहने से मालूम होता था कि वह कुछ

ही दूर होगा, पर १२ किलोमीटर से कम नहीं था। उस गांव में पहुंचते-पहुंचते सूर्यास्त हो गया। रास्ता सारा दुर्गम पहाड़ों का था। एक घाटी पार करते ही हमारे सामने विशाल जलनिधि थी, जो कई मील तक सांप की तरह टेढ़ी-मेढ़ी चली गयी थी। उसके किनारे के पहाड़ नंगे नहीं थे। पर पुराने जंगल सुरक्षित नहीं रहे थे। अब उन्हें फिर से लगाया जा रहा था। अब इस कम्यून के ९४ प्रतिशत से अधिक खेत भगवान भरोसे फसल नहीं पैदा करते। प्रदेश बहुत ही सुन्दर मालूम होता था। मन चाहता था कि देखने में और समय लगाया जाय। पर हमें ऐसे बीहड़ रास्ते से कुनमिङ पहुंचना था जो ७० किलोमीटर से कम क्या होगा। महा-सरोवर के निर्माण से कितने ही गांवों और खेतों को उसके पेट में समाना पड़ा। लेकिन इससे किसी व्यक्ति या परिवार को हानि नहीं पहुंची। अब तो सभी गांव और खेत कम्यून के थे, जो उनके लिए नये घर, नयी बस्ती बनाने को तैयार था। अन्त में हम छोइ-कुङ पहुंच गये। पहाड़ की जड़ में एक बड़ा फाटक दिखाई पड़ा, जो शायद पितर मंदिर का था। अब वह मिस्तरीखाने का काम दे रहा था। इसमें मशीनें बनाने के लिए बहुत से खराद और दूसरी चीजें गड़ी हुई थीं। संचालक ने वृद्धाश्रम दिखाना चाहा, मगर उसके लिए डेढ़-दो-सौ फुट ऊपर चढ़ना पड़ता, जिसके लिए अभी हमारा स्वास्थ्य अनुकूल नहीं था। हम नये घरों को देखने गये। वे पांत से बने हुए थे, पर सहकारी फार्म के युग के थे, कम्यून के लायक नहीं। लौटते वक्त फिर उसी रास्ते को हेडक्वार्टर तक नापना पड़ा। अब काफी अंधेरा हो गया था। अंधेरे में बिजली के दीपकों की पांत दूर तक दिखलाई पड़ी, जिनके नीचे लौह भट्ठों से आग की लाल-लाल लपटें निकल रही थीं। स्त्री-पुरुष अपने भट्ठों के पास मुस्तैदी से खड़े थे, क्योंकि घंटे-डेढ़-घंटे बाद उन्हें पिघले लोहे को निकालना और लौह-पत्थर तथा कोयले को भट्ठी में फिर से डालना पड़ता था। वे बारी-बारी से काम करते थे, इसलिए रात भर जागने का कोई सवाल नहीं था।

यह पहले का दरिद्रतम इलाका था। फिर भी उन्होंने कुछ न छिपा हमें उसे बड़े प्रेम से दिखाया। हम उनकी कठिनाइयों को जानते थे।

पर उनकी सफलताएं उनकी कठिनाइयों से कहीं अधिक थीं। इस गरीब इलाके में अब कहीं कोई भूखा नहीं, कहीं कोई भिखमंगा नहीं, कहीं कोई बेकार नहीं था। आदमी काम को नहीं, बल्कि काम आदमी को ढूंढ़ रहा है। संचालक ने १९५९ की योजना के बारे में बताते हुए कहा : "हम १० ट्रैक्टर, ३० ट्रक, १००० घोड़ा-गाड़ियां लायेंगे। हमारे हिस्से में ६ किलोमीटर रेल की लाइन आयी है। हमारा धातु बनाने का काम अगले साल दूने से अधिक हो जायगा। अक्तूबर में हमने १०४० टन लोहा, ७० टन फौलाद तथा एक टन तांबा पैदा किया। साल में हम ७२०० टन पत्थर का कोयला निकालते हैं। धातु गलाने के लिए हमें बाहर से कोयला लाने की जरूरत नहीं है। हमारे कारखाने में इस साल ४५ टन रासायनिक खाद और २० टन शराब पैदा हुई। ७ गांवों में बिजली लग चुकी है। हमारे पास इस समय २ ट्रक, २६० घोड़ा-गाड़ियां, १०० घोड़े, १४० खच्चर, १३ गदहे, २४० बैल, ४०० गायें, ८०० भैंसे और १२०० भैंस हैं।" यह कहने की जरूरत नहीं कि गायें और भैंसें दूध के लिए नहीं हैं, क्योंकि दूध पीना यहां के लोग जानते ही नहीं।

फलों की तो यह भूमि ही है, इसलिए ८०० एकड़ के बगीचे आगे और अधिक बढ़ेंगे। जीवन-तल के ऊंचा होने के साथ फलों का खर्च ज्यादा होगा और रेल बनने के बाद उन्हें बाहर आसानी से भेजा जा सकेगा। १९५७ में बनी विशाल जलनिधि से ६०,००० एकड़ की सिंचाई होती है। यह भी मालूम हुआ कि कम्यून के ५ वृद्धाश्रमों में १२० वृद्ध-वृद्धाएं रहते हैं। ५ क्लब और १ नाटक मंडली मनोरंजन और सांस्कृतिक भूख की तृप्ति करते हैं। कम्यून पार्लियामेन्ट (सम्मेलन) के ९८ सदस्य हैं और परिषद २१ सदस्यों की है। कार्यालय के अतिरिक्त ५ विभागों के लिए अलग-अलग समितियां हैं। सारा कम्यून शत-प्रतिशत संगठित है। काम करनेवाले नर-नारी सेना की तरह संगठित तथा अनुशासनबद्ध होकर काम करते हैं। वे सामने के पहाड़ को भी तृणवत समझते हैं। जो सफलता उन्होंने पिछले सालों में अपनी आंखों देखी है, उससे उनके भीतर अडिग विश्वास पैदा हो गया है। स्वास्थ्य का खयाल करके किसी से भी आवश्यकता से अधिक समय तक काम नहीं लिया जाता,